ओ३म्

आर्य जगत

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 16 जून 2013 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 16 जून, 2013 से 22 जून, 2013

ज्ये. शु.–07 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 77, अंक 60, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,113 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

सरस्वती, डी.ए.वी. अमृतसर में नवसत्र पावन यज्ञ से आरम्भ

सरस्वती डी.ए.वी. कन्या सीनियर स्कूल, ढाब खटीकाँ, अमृतसर में नवसत्र 2013–14 पावन यज्ञ से आरम्भ हुआ जिसमें मुख्य अतिथि भाजपा राष्ट्रीय उपप्रधान एवं भूतपूर्व स्वास्थ्य कल्याणमंत्री पंजाब सरकार माननीय प्रो.लक्ष्मीकांता चावला पधारीं।

कार्यवाहक प्रिंसीपल श्रीमती निशी शर्मा जी ने स्कूल के इतिहास और उपलब्धियों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला। प्रधान श्री जे.के. लूथरा जी ने मुख्य अतिथि का परिचय देते हुए उनकी कर्त्तव्यनिष्ठा व समाज सेवा के प्रति कार्यों का वर्णन करते हुए उन्हें शुभ कामनाएं दीं तथा उनके द्वारा समाज सेवा के प्रति दिए जा रहे योगदान पर प्रकाश डाला। इसके अतिरिक्त उन्होंने महर्षि दयानंद द्वारा स्थापित आर्य समाज के उद्देश्यों के प्रति सविस्तार परिचय करवाया।

मुख्य अतिथि ने महान भारतीय सम्राट् विक्रमादित्य के बारे में बताते हुए कहा कि किस प्रकार उन्होंने शक और हूणों को पराजय देकर विशाल भारतीय साम्राज्य स्थापित किया और तभी से विशुद्ध भारतीय विक्रमी सम्वत् आरम्भ हुआ। उन्होंने छात्राओं को कहा कि वह अपने जन्मदिवस पर दीपक जलाएं ना कि बुझाएं। उन्होंने स्वदेश–प्रेम की बहुत सारी उपयोगी शिक्षाएं दीं।

इस अवसर पर जरुरतमंद छात्राओं को कापियां, किताबें, वर्दियां व विभिन्न कक्षाओं में प्रथम स्थान करने वाली सभी छात्राओं को मैडल प्रदान किए गए। स्कूल की ओर से मुख्य अतिथि के सम्मान में एक स्मृति चिन्ह प्रदान किया गया।

अंत में प्रिंसीपल विनिता गर्ग ने आए हुए सभी अतिथि गण का धन्यवाद किया।

समाज को ज्ञान के शिखर तक पहुंचाना है अध्यापकों की ज़िम्मेदारी
डी.ए.वी. शिक्षण महाविद्यालय अमृतसर का वार्षिक उत्सव सम्पन्न

डी.ए.वी. विश्वविद्यालय के उपकुलपति डॉ. आर. के कोहली ने अध्यापकों से आह्वान किया कि वह सम्माननीय व पूजनीय शिक्षण व्यवसाय के माध्यम से राष्ट्र एवं समाज के पुनर्निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएं। समाज के बौद्धिक ज्ञान को शिखर तक पहुँचाना अध्यापकों की जिम्मेदारी है, इसलिए शिक्षक युवा पीढ़ी का मार्गदर्शक बनें। उनके भीतर शिक्षा का प्रकाश पैदा कर उन्हें जिम्मेदार नागरिक बनाएं। बेरी गेट स्थित डी.ए.वी. कॉलेज ऑफ एजुकेशन फार वूमेन के वार्षिक पुरस्कार वितरण समारोह में अध्यापकों को पुरस्कार देने के बाद वह उपस्थित विद्वानों, छात्राओं व अध्यापकों को सम्बोधित कर रहे थे। समारोह की अध्यक्षता श्री जे.के. लूथरा ने की। डॉ. प्रिंसीपल विनीता गर्ग ने मुख्य मेहमान व अन्य मेहमानों का स्वागत किया और महाविद्यालय की वार्षिक उपलब्धियां बताई। समारोह में बी.बी.के. डी.ए.वी. कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. नीलम कामरा, प्रिंसिपल नीरा शर्मा, प्रिंसिपल अंजना गुप्ता, प्रिंसिपल संजीव कोछड़, प्रिंसिपल शवनम हांडा, प्रिंसिपल निशी शर्मा, प्रिंसिपल सुनीता शर्मा, प्रिकसपल नीना बतारा, प्रिंपिल किरण वर्मा, भिखीविंड से सरदार इकबाल सिंह बेदी, श्री आर.आर. भारद्वाज, श्री राजिन्दर गोयल, श्री हीरा लाल कन्धारी, श्री अरुण खन्ना तथा विभिन्न आर्य समाजों से गणमान्य सहित अन्य शिक्षाविद् आदि भी मौजूद थे।

समारोह में वर्तमान शैक्षणिक वर्ष के बी.एड., पी.जी.डी.सी.ए., ई.टी.टी. पाठ्यक्रम की लगभग 150 छात्राओं को सम्मानित किया गया। मुख्य अतिथि उपकुलपति डॉ. आर.के. कोहली ने पुरस्कार प्राप्त करने वाली छात्राओं को समाज के प्रति अपना दायित्व निभाने की प्रेरणा दी। अंत में स्थानीय समिति के अध्यक्ष श्री जे.के.लूथरा ने सब का धन्यवाद किया और दात्राओं को उनके उच्चवल भविष्य की कामना के साथ आर्शीवाद दिया। समारोह का समापन डी.ए.वी. गान व राष्ट्रगान से हुआ।

डी.ए.वी. के छात्रों ने जल संरक्षण की दी जानकारी

जल संरक्षण के विषय पर डी.ए.वी. सीनियर सेकेन्डरी पब्लिक स्कूल झिंगुरदह में एक कार्यक्रम का किया गया। डी.ए.वी. कालेज मैनेजिंग कमेटी नई दिल्ली के तत्वाधान में आयोजित इस कार्यक्रम में भाषण के माध्यम से ग्रामीण अंचल में अभियान चलाकर लोगों को जल संरक्षण के विषय में बताया गया।

छात्रों द्वारा निकटस्थ गाँवों में जाकर जल संरक्षण के महत्व की जानकारी लोगों को दी गईं। विद्यालय के शिक्षक एवं सी.सी.ए. प्रमारी श्री आर.पी.पाण्डेय, श्री धर्मेन्द्र सिंह, श्री ललित कुमार झा, श्री अजय कुमार शुक्ल ने भी ग्रामीणों को जल संरक्षण पर कार्यक्रमों द्वारा जानकारी दी कि जल ही जीवन है, इसे बचाना प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है। विद्यालय के प्राचार्य डा. ए.के मिश्र की अध्यक्षता में विद्यालय की शिक्षिका श्रीमती तन्द्रा सिंह, श्रीमती के जी प्रसन्ना, श्रीमती नर्मदा महापात्रो एवं मीना कुमारी की अगुवाई में विद्यालय के प्रांगण में चित्र प्रदर्शनी, सूक्ति लेखन, भाषण, कविता पाठ, नाटक के माध्यम से जल संरक्षण के लिए छात्रों ने अपनी प्रतिभा और दक्षता का परिचय दिया अन्त में विद्यालय के प्राचार्य डा. ए. के मिश्र ने अपने उद्बोधन में बताया कि जल क्या है, जल को हम कैसे सदुपयोग में लाएँ और जल को प्रदूषण कैसे किया बचायें।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 16 जून, 2013 से 22 जून, 2013

पूजा

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

उत ब्रुवन्तु नो निदो, निरन्यतश् चिदारत।
दधाना इन्द्र इद् दुवः।। ऋग् 1.4.5.

ऋषिः **मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः**। देवता **इन्द्रः**। छन्दः **गायत्री**।

● **(उत)** और यदि **(नः)** हमारे **(निदः)** निंदक **(ब्रुवन्तु)** कहें [कि इस स्थान से तो निकल ही जाओ] **(अन्यतः चित्)** अन्य स्थानों से भी **(निर् आरत)** बाहर निकल जाओ [तो भी हम] **(इन्द्र इत्)** परमैश्वर्यशाली परमेश्वर में ही **(दुवः)** पूजा को **(दधानाः)** धारण करने वाले [हों]।

● हमने आज से ईश्वर–भक्ति का व्रत लिया है, हम परमैश्वर्यशाली इन्द्र–प्रभु के पुजारी हुए हैं। पर न जाने क्यों हमारी ईश्वर–पूजा को कुछ नास्तिक लोग पसन्द नहीं करते। वे चाहते हैं कि हम भी उन जैसे नास्तिक हो जायें; हम भी अनेक दल में सम्मिलित होकर प्रभु की आज्ञा के विरुद्ध कार्य करें; चोरी करें, सज्जनों को धोखा दें, हिंसा–उपद्रव मचायें। हमारा प्रातः–सायं ध्यान में बैठना उन्हें नहीं रुचता। वे हम पर ताने कसते हैं। कहते हैं–तुम वंचक हो, तुम यह दिखाना चाहते हो कि हम बड़े सन्त हैं, और इस प्रकार समाज को अपनी ओर आकृष्ट करके भोली जनता से अपना कार्य सिद्ध करना चाहते हो। उनके इन व्यंग्य–बाणों से विद्ध होकर हमारे कई साथी, जिन्होंने हमारे साथ प्रभु–पूजा का व्रत लिया था, पूजा छोड़ चुके हैं। पर, हे प्रभु! हमें तो तुम ऐसा बल दो कि हमारे निंदक लोग हमारी कितनी ही निन्दा करें, हमें कितना ही डरायें–धमकायें, हमें कितना ही कष्ट दें, पर हम तुम्हारी पूजा न छोड़ें।

हम जानते हैं कि इस प्रकार निन्दकों की करतूतों को सहना आसान नहीं है। जब बहुत से निन्दक लोग मिलकर ताली पीटते हैं, फब्तियाँ कसते हैं, सामान जला देते हैं तब भी सचाई पर अटल रहना विरलों का ही कार्य होता है। पर हमारी इच्छा यही है कि ऐसे समयों में भी हम प्रभु–पूजा में अटल रहें। यदि हमारे निन्दक लोग कहें कि तुम इस घर से निकल जाओ, इस गाँव से निकल जाओ, इस नगर से निकल जाओ देश से तो भी हम न घबरायें। कोई शत्रु हमारे शरीर से पत्थर बाँधकर हमें समुद्र में फेंकने को तैयार हो जाए, आग में डालने को तत्पर हो जाए, पहाड़ की चोटी से गिराने को उद्यत हो जाए तो भी हम ईश्वर पूजा को न छोड़ें। ध्रुव और प्रह्लाद के समान ईश्वर–भक्त हों। हमारी ईश्वर–भक्ति को देखकर एक बार शत्रु भी हमारी प्रशंसा कर उठे, सामान्य मनुष्यों का तो कहना ही क्या है।

यदि हमारा ईश्वर–विश्वास ऐसा दृढ़ होगा तो प्रभु की कृपा हमें प्राप्त होगी। निन्दकों की निन्दाओं और शत्रुओं की बाधाओं की काली घटाएँ स्वयं हमारे ऊपर से छँटती चलेंगी। परमैश्वर्यवान् इन्द्र–प्रभु हम पर अपने दिव्य ऐश्वर्यों की वर्षा करेंगे। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

घोर घने जंगल में

● **महात्मा आनन्द स्वामी**

पिछले अंक में हमने पढ़ा कि उत्तम धन वह है जो पांच भागों में बांटा जाय – धर्म के लिए, यश के लिए, धन के लिए, अपने लिए और अपनों के लिए। जो धन इस प्रकार पांच भागों में बांट दिया जाय उसका अनुचित प्रयोग नहीं होता। ऐसा धन प्रशंसा करने की वस्तु है। धन के धमार्थ प्रयोग के लाभ और यह प्रयोग कैसा हो यह भी स्वामी जी ने बताया।

धन के धर्म के लिए प्रयोग को दान बताया और कहा मानव जीवन की सफलता दान में है। यही धर्म है। आगे कहा इस मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए शारीरिक, वाचिक और मानसिक इन तीन प्रकार के तप की आवश्यकता है। इन तीनों की व्याख्या की।

मानसिक तप की कठिनता के प्रश्न पर स्वामी जी ने कहा – हमने स्वयं को मोहजाल में फंसा रखा है, हम इससे बाहर आते नहीं और चिल्लाते रहते हैं कि इस जाल ने हमें पकड़ रखा है। गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर ने लाहौर में लाला धनीराम भल्ला जी के घर पर उपनिषद्–कथा की और कर्म–सिद्धांत समझाने को 'बंदी' नाम कविता सुनाई।

स्वामी जी ने विष्णु पुराण से भी कथा सुनाई और कहा आज संसार मोह और मायाजाल में फंस गया है। उसने वेदमार्ग को छोड़ दिया है तो शान्ति और सुख कैसे मिले?

अन्त में संगत की बात कह रहे थे स्वामी जी। युवाओं को बुरी संगत से बचाने की बात कही और कहा ईश्वर की मौन लाठी से डरो, वह हर स्थान पर पहुंच जाती है–

अब आगे.....

परन्तु मैं उस युवक की बात कह रहा था। बुरी संगत के कारण बहुत–सी बुरी बातें उसने सीख लीं। एक दिन ऋतु बहुत अच्छी थी। भीनी–भीनी वायु चल रही थी। वह अपने मकान की छत पर खड़ा होकर पतंग उड़ा रहा था कि डोर टूट गई। पतंग शहर से पूरे जंगल के अंदर एक साधु की कुटिया के पास जा गिरी। महात्मा ने पतंग उठाई, अपनी कुटिया में ले जाकर रख दी। तभी पतंग को ढूँढ़ता हुआ वह युवक भी वहाँ पहुँचा। वह महात्मा के पास जाकर बोला, "आपने यहाँ कोई पतंग गिरती हुई तो नहीं देखी?"

महात्मा ने कहा, "हाँ बेटा, देखी तो है।"

युवक ने पूछा, "कहाँ है?"

महात्मा बोले, "अन्दर मेरी कुटिया में रखी है।"

युवक ने कहा, "वह पतंग मेरी है।"

महात्मा बोले, "तेरी है बच्चा, तो तू ले जा। मैं तेरी पतंग का क्या करूँगा?"

पतंग देकर महात्मा ने पूछा, "बेटा, क्या तू प्रतिदिन इसी प्रकार पतंग उड़ाता है?"

युवक ने कहा, "नहीं जी, मैं कभी–कभी उड़ाता हूँ; जब मित्र न आयें और जब ताश और जुए का दौर न चले तो मैं अकेला क्या करूँ?"

महात्मा बोले, "तो तू ताश और जुआ भी खेलता है?"

युवक ने कहा, "जब कभी पीने–पिलाने का अवसर न मिले, मित्र लोग आये हों, तब फिर करें क्या?"

महात्मा बोले, "अरे, तू शराब भी पीता है?"

युवक ने कहा, "जी हाँ! यदि कभी वेश्याओं के यहाँ जाने, नाच देखने और गाना सुनने का अवसर न मिले तो।"

महात्मा चिल्लाकर बोले, "अरे, तो तू यह कर्म भी करता है? किस ओर जा रहा है तू? किसने तुझे सर्वनाश के इस मार्ग पर चला दिया? यह तो मृत्यु का मार्ग है बच्चे! जीवन का मार्ग नहीं है। देख, धोखे में न रह। यौवन केवल एक बार आता है जीवन में, चला जाए तो फिर नहीं आता–

यह दुनिया एक सराय फ़ानी देखी।
हर चीज यहाँ की आनी–जानी देखी।।
जो आके न जाए वो बुढ़ापा देखा।
जो जाके न आये वो जवानी देखी।।

अरे, क्यों नष्ट कर रहा है यौवन को? आज तेरे शरीर में शक्ति है; आँखों में ज्योति, मुख पर सौन्दर्य, हाथों में बल है। आज यदि सुमार्ग पर न आया तो फिर प्रयत्न करने पर भी नहीं आ पाएगा। आज तू पहाड़ों का सीना चीर सकता है, तूफ़ानों को ललकार सकता है, सागरों की छाती पर सवार हो सकता है। आज तुझे सूर्य और चन्द्रमा खिलौने प्रतीत होते हैं परन्तु समय आएगा जब तू हाथ हिलाना चाहेगा और वह हिलेगा नहीं, पाँव से चलना चाहेगा और वे चलेंगे नहीं। आज तेरी आँखें आकाश में देखती हैं, परन्तु समय आएगा जब पास

रखी लाठी भी तुझे दिखाई न देगी। अभी समय है, सँभल सके तो सँभल, नहीं तो फिर यह समय आएगा नहीं।"

महात्मा ने इस प्रकार कहा तो नौजवान चौंका। महात्मा की वाणी में प्रभाव था। सच्ची बात वे कह रहे थे। इससे युवक के मन पर चोट लगी और वह बैचेन हो उठा, हाथ जोड़कर बोला, "महाराज! ऐसी बात कभी पहले नहीं सुनी। आप आज्ञा दें तो कभी–कभी आपके पास आ जाया करूँ।"

महात्मा ने कहा, "तुम जब भी चाहो आ सकते हो। मेरे यहाँ कोई रोक–टोक नहीं।"

और वह युवक प्रतिदिन महात्मा जी के पास आने लगा। महात्मा जी ने उसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान आदि की बातें सुनाईं वे हृदय से युवक को सुधारना चाहते थे। युवक के हृदय में लगन थी। उसने शीघ्रता से इन बातों को सीखा। महात्माजी ने इस युवक को दस भट्ठियों में डालकर कुन्दन बना दिया। उसकी पुरानी आदतों का चिह्न भी मिट गया। अब वह यम–नियमों का पालन करता, कई घण्टे आसन लगाता। कई प्रकार के प्राणायाम करता, ध्यान भी लगाता। महात्मा ने उसे सब–कुछ बता दिया। 'प्राण–उत्थान' की विधि भी बता दी कि किस प्रकार पाँव के अंगूठे से लेकर शरीर के प्रत्येक अंग से प्राण को ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचा दिया जाता है। वह सब–कुछ बताया परन्तु समाधि की विधि नहीं बताई।

एक दिन युवक ने कहा, "महाराज! आपने सब–कुछ बताया परन्तु समाधि लगाने की विधि तो बताई ही नहीं।"

महात्मा हँसकर बोले, "बताएंगे, अभी जल्दी क्या है?"

कुछ समय व्यतीत हुआ, युवक ने कहा, "महाराज जी! अब?"

महात्मा जी ने फिर टाल दिया।

अन्त में एक दिन युवक ने दु:खी होकर कहा, "महाराज! आखिर कब तक परीक्षा देनी होगी? मुझमें कौन–सी कमी है जिसके कारण आप मुझपर कृपा नहीं करते है?"

महात्मा उसे पास बिठाकर बोले, "कृपा करने की बात नहीं है बेटा! जिस समाधि की अवस्था में तू जाना चाहता है वहाँ पहुँचने से पूर्व घर–बार, संसार, परिवार का मोह छोड़ देना पड़ता है। इतने दिनों से मैं प्रतीक्षा करता था, सोचता था कि तू स्वयं ही समझकर इस मोह को छोड़ देगा। परन्तु देखता हूँ कि तू इस मोह को छोड़ नहीं पाता। इसलिए समाधि लगाने की विधि तुझे बता नहीं सका।"

युवक ने कहा, "परन्तु गुरुदेव! इस मोह को कैसे छोड़ दूँ? यह तो सत्य है कि मेरी माँ है और पिता है, मेरी पत्नी है...."

महात्मा बोले, "नहीं बेटा! यह सत्य नहीं, वहम है। जिन्हें आज तू माता, पिता और पत्नी कहता है वे सदा से तेरे माता, पिता और पत्नी थे नहीं, सदा रहेंगे भी नहीं। सच्ची माता, पिता और मित्र तो वह परमात्मा है जिसके लिए शास्त्र कहता है–

त्वमेव माता च पिता त्वमेव,
त्वमेव बन्धुश्च सदा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव,
त्वमेव सर्वं मम देव देव।।

तू ही माँ है, तू ही पिता है, तू ही मेरा साथी, तू ही मेरा धन, तू ही महल और मकान– तू ही मेरा सब–कुछ है मेरे देवताओं के देवता!

युवक ने कहा, "यह सत्य है गुरुदेव कि ईश्वर हमारा सब–कुछ है परन्तु माता–पिता और दूसरे लोग भी सत्य हैं, उनसे मैं इन्कार कैसे कर सकता हूँ? उन्हें भूल कैसे सकता हूँ?"

महात्मा हँसकर बोले, "सत्य और असत्य की बात कहता है परन्तु सत्य और असत्य को समझना तो सरल नहीं। सैकड़ों वर्ष पूर्व यूनान के महाराज मिलन्द भी इसीलिए धोखे में आ गये थे। बौद्धधर्म के महाविद्वान् आचार्य नागार्जुन उनके पास पहुँचे तो बोले, 'जो है, वह नहीं है जो नहीं है वह विद्यमान है, इस बात को आप क्यों नहीं मानते?'

महाराज मिलन्द ने कहा, 'जो है वह नही है, जो नहीं है वह है, यह बात कैसे हो सकती है?'

नागार्जुन बोले, 'मुझे भूख लगी है। आपके पास ही हो तो मँगवा दीजिए। मैं उसे खाऊँगा।' राजमहल में दही की कमी नहीं थी। दही का भरा हुआ कटोरा सामने आया तो नागार्जुन बोले, 'मिलन्द, इस दही को देखो। मैं तो गाय के दूध का दही खाना चाहता था, यह किसके दूध का दही है?'

मिलन्द ने कहा, 'यह गाय के दूध का दही है, आचार्य महाराज!' नागार्जुन बोले, 'अर्थात यह गाय का दूध है?' मिलन्द ने कहा, 'जी!' नागार्जुन बोले, 'यदि यह गाय का दूध है तो दही कैसे?' मिलन्द ने घबराकर कहा, 'दही तो यह है?'

आचार्य नागार्जुन बोले, 'घबराओ नहीं, यूनान–सम्राट्! मैं यही बात आपको बताना चाहता था कि यह दही है परन्तु दही नहीं भी है क्योंकि वस्तुतः यह दूध है। परन्तु दूध नहीं भी है क्योंकि यह दही बन गया है। हर वस्तु एक ही समय में विद्यमान भी होती है और अविद्यमान भी।'

मिलन्द कोई उत्तर न दे सके; बोले, 'आप दही खाइये तो सही!'

नागार्जुन दही खाते हुए बोले, 'महाराज! आज से कोई चालीस वर्ष पूर्व इस महल में एक राजकुमार था। एक छोटे–से झूले में वह पड़ा रहता था। बोल नहीं सकता था। स्वयं चल नहीं सकता था। अपनी माँ की छाती से वह दूध पीता था। इतना निर्बल था कि एक झूले से उठाकर दूसरे झूले में कोई उसे रख दे तो वह झूले में वापस नहीं आ सकता था। आज वह राजकुमार कहाँ है?'

मिलन्द ने आश्चर्य से कहा, 'वह राजकुमार? कौन सा राजकुमार?'

नागार्जुन हँसते हुए बोले, 'तुम ही वे राजकुमार थे यूनान–सम्राट! मैं तुम्हारे बचपन की बात कह रहा हूँ। क्या तुम कह सकते हो कि तुम वह राजकुमार नहीं हो?'

मिलन्द ने कहा, 'यह कैसे कह सकता हूँ?'

नागार्जुन बोले, "इसका अर्थ यह है कि 'तुम वही राजकुमार हो, यद्यपि तुम राजकुमार नहीं हो। न होने पर भी वह राजकुमार विद्यमान है क्योंकि वह कभी मरा नहीं। यहीं संसार है। प्रत्येक वस्तु विद्यमान भी है और अविद्यमान भी।'

वन में रहनेवाले उस महात्मा ने कहा, "यूनान के महाराज मिलन्द इस बात का उत्तर नहीं दे सके। नागार्जुन की बात उन्होंने मान ली; परन्तु नागार्जुन और मिलन्द दोनों ही इस बात को समझ नहीं पाये कि वे एक बहुत बड़ी भूल कर रहे थे। दोनों ने पहले दूध और दही को, फिर राजकुमार और महाराज को सत्य मान लिया। दोनों ने यह नहीं समझा कि दूध और दही, राजकुमार और महाराज दोनों ही माया का रूप है। दही बनता है तो दूध समाप्त हो जाता है। महाराज बनता है तो राजकुमार समाप्त हो जाता है। प्रत्येक वस्तु को हम उसके रूप और गुण के कारण एक नाम देते हैं। ये रूप और गुण बदल जाएं तो वस्तु का नाम भी बदल जाता है। पहली वस्तु समाप्त हो जाती है, नई वस्तु उत्पन्न हो जाती है। जो नष्ट और उत्पन्न होती है वह परिवर्तनशील है। जो बदल जाये वह स्थिर नहीं। स्थिर वह है जो सदा विद्यमान रहे। राजकुमार और महाराज में सत्य है वह आत्मा जिसके कारण महाराज ने कहा, मैं ही राजकुमार था। इस आत्मा को मिलन्द जानता नहीं था। नागार्जुन भी जानते नहीं थे। इसलिए दोनों भूल कर रहे थे। तू भी जब कहता है, मेरे पिता, मेरी माता, मेरी पत्नी–तू भी वही भूल कर रहा है। तू भूल गया है कि ये माता, पिता और पत्नी केवल थोड़ी देर के लिए माता, पिता और पत्नी हैं। वास्तविक सत्य वह है जो सदा एक–सा रहता है, उसे आत्मा कहते हैं।"

युवक ने यह सब–कुछ सुना, परन्तु उसके मन में बैठा हुआ मोह दूर नहीं हुआ। उसने कहा, "आपके इस परिवर्तनशील और स्थिर की बात मैं समझ नहीं पाया, परन्तु एक बात तो मैं जानता हूँ कि मेरे पिता मेरे लिए प्राण देते हैं। मुझे थोड़ा–सा कष्ट हो जाए तो मेरे लिए बेचैन हो उठते हैं। मेरी माँ तो एक दिन भी मुझे देखे नहीं तो उसके लिए संसार अन्धकारमय हो जाता है। और मेरी पत्नी तो हर समय मेरे नाम का जाप करती रहती है। आप कहते हैं, इनके मोह को छोड़ दे। कैसे छोड़ दूँ?" युवक ने कहा, "यह बात तो ठीक प्रतीत नहीं होती।"

महात्मा बोले, "तू वहम में फँस गया है बच्चे! कोई तेरे लिए प्राण नहीं देता, कोई तेरे लिए बेचैन नहीं होता, कोई तेरे नाम का जप नहीं करता। इस संसार का प्रेम केवल स्वार्थ का प्रेम है। सब लोग अपने लिए तुझे प्यार करते हैं। जब तक तेरे शरीर में शक्ति और जेब में पैसा है, तभी तक ये सब लोग तुझे चाहते हैं। जब शरीर में शक्ति और जेब में पैसा न रहे तब कोई तुझे चाहेगा नहीं।" रुककर महात्मा बोले, "अच्छा मेरी एक बात मान। आज तू घर जाएगा न? तू अपनी माँ से कहना, आज तबीयत बहुत खराब है, पता नहीं क्या हुआ जाता है। और फिर अपने सोने वाले कमरे में जाकर अपने पलँग पर लेट जाना। प्राण रोकने की विधि तू जानता है, प्राण रोक लेना। तुझे सुनाई सब–कुछ देगा परन्तु तू बोलना मत! लाश की भाँति पड़े रहना। और देख, प्राण रोकने से पूर्व अपनी माँ से यह भी कहना कि यदि मैं मर जाऊँ तो श्मशान में ले–जाने से पूर्व मेरे गुरु को बुला लेना। वे मुझे देख लें, उसके पश्चात् श्मशान में ले जाना। जा ऐसा कर, फिर तुझे मेरी बात समझ में आएगी।"

युवक घर पहुँचा, माँ को देखते ही बोला, "माँ, पता नहीं आज मुझे क्या हुआ जाता है। दिल घुटा जाता है। साँस रुका जाता है। खड़ा रहने की शक्ति नहीं। ऐसा लगता है जैसे प्राण निकल जाएंगे।"

माँ ने घबराकर कहा, "ऐसी बात न कर बेटा! तेरे प्राण क्यों निकलें, मेरे निकल जाएं। तू थक गया है। थोड़ी देर विश्राम कर लें, तबीयत ठीक हो जाएगी।"

युवक ने कहा, "हाँ, मैं विश्राम करूँगा। अपने कमरे में लेटता हूँ। परन्तु माँ, यदि मुझे कुछ हो जाए, यदि मैं मर जाऊँ तो श्मशान में ले जाने से पूर्व गुरुजी को बुला लेना, ऐसा करना भूलना नहीं!"

माँ बोली, "कैसी बातें करता है तू! तुझे कुछ नहीं होगा। जाकर थोड़ा–सा विश्राम कर ले। मैं अभी तेरे पिताजी को बुलाती हूँ।"

युवक अपने कमरे में गया। पलँग पर लेटा। कुछ देर के पश्चात् उसने प्राणायाम के द्वारा अपने प्राण चढ़ा लिये। साँस रुक गया। थोड़ी ही देर में शरीर ठन्डा होने लगा। कोई आधे घण्टे पश्चात् उसकी पत्नी अन्दर आ गई। उसे देखा, हिलाया, बुलाया, नब्ज देखी और चीखती हुई बाहर आ गई, बोली, "माताजी! ओ माताजी! देखो! यह अन्दर क्या हो गया है?"

माँ ने घबराकर पूछा, "क्या हुआ?"

पत्नी ने सिसकते हुए कहा, "वे... वे बोलते नहीं, हिलते नहीं, शरीर ठण्डा है।"

माँ दौड़ी हुई अन्दर गई। देखा पुत्र का

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

संदर्भः 'महाभारत' का एक प्रसंग

बड़ों का अपमान और आत्मप्रशंसा दोनों निंदनीय हैं

● प्रो. ओमकुमार आर्य

रामायण और 'महाभारत' ये दोनों हमारे इतिहास–ग्रंथ ही नहीं 'गौरव ग्रन्थ' हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने षड्यंत्र के तहत इन दोनों ग्रन्थों की ऐतिहासिकता पर प्रश्नचिह्न लगाकर हमारे भव्य अतीत को और अतीत कालीन परंपराओं को ध्वस्त करने का ही कुप्रयास किया था जो किसी हद तक तो अपना कुप्रभाव दिखा सका, उसके कुछ कुपरिणाम भी सामने आये, किंतु चूंकि हमारी जड़ें बहुत गहरी थीं। हमारा इतिहास बहुत ही सबल आधार पर स्थित था अतः थोड़ी–बहुत क्षति तो हमें अवश्य झेलनी पड़ी किंतु पाश्चात्यों के दुर्भावनापूर्ण कुप्रयास एवं षड्यंत्र न तो हमें और न हमारे इतिहास को समूलतया नष्ट कर सके। शायद इसी को ध्यान में रखते हुए उर्दू के प्रसिद्ध कवि अल्लामा इकबाल ने कभी कहा था–

यूनान, मिश्र, रोमाँ, सब मिट गये जहाँ से कोई बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी लेकिन अब ऐसा लगता है कि हमारे आलस्य एवं उपेक्षा के कारण एवं देश के नीति–नियँताओं की अंग्रेजियत–परस्त दास–मानसिकता के कारण 'हस्ती मिटने' मिटाने का जो कार्य पराधीनता के काल में नहीं हो सका अब इस आधी–अधूरी स्वाधीनता के काल में हो जाएगा, ऐसी आशंका है।

अपने अतीत और अतीत–कालीन इतिहास के विषय में उक्त टिप्पणी आवश्यक थी ताकि हमारी युवा पीढ़ी अपनी ऐतिहासिक विरासत की सुरक्षा के प्रति सजग एवं सावधान रहे। इस लेख का विषय इससे अलग है। इसके शीर्षक में मैंने ये दो शब्द–बड़ों का 'अपमान' एवं 'आत्म प्रशंसा'– 'महाभारत' के एक प्रसिद्ध प्रसंग में से लिये हैं, जिनको (बड़ों का अपमान, और आत्म प्रशंसा को) महाभारत कार ने निंदनीय ही नहीं अपितु 'मृत्यु' के समान कहा है। आज जिस काल में हमरत रहे हैं, उसमें इन दोनों का ही बोलबाला है, राजनीति तो पूर्णतया इनका एक घिनौना खेल और निकृष्ट अखाड़ा बन चुकी है, शायद इसी का भयावह कुपरिणाम है जो हमारे चारों ओर मृत्यु का नंगा नाच हो रहा है, 'महाभारत' का यह विवेच्य प्रसंग इसी ओर ही तो इंगित कर रहा है। ओ३म् देखें, कैसे?

एक बार युधिष्ठिर को भ्रम हो गया कि गाण्डीवधारी अर्जुन के हाथों महाबली कर्ण मार दिया गया है। किंतु वास्तविकता यह नहीं थी। जब युधिष्ठिर को वास्तविकता का पता चला (कि कर्ण तो जीवित है) तो उसे बहुत दुःख हुआ। वे अर्जुन से कहने लगे कि हम तो तुम्हारे ही भरोसे युद्ध में विजय प्राप्त करने की आस लगाये बैठे थे, तुम्हारा शौर्य ही हमारा सम्बल था। विजय के मार्ग में कर्ण ही तो सबसे बड़ी बाधा है और उस बाधा को तुम अब तक दूर नहीं कर पाये हो, हम जीतेंगे कैसे? और भी बहुत कुछ कहा और आवेश तथा क्रोध के वशीभूत अर्जुन के शौर्य एवं गाण्डीव को ही युधिष्ठिर धिक्कारने लगे, उन्होंने कहा

धिग्गाण्डीवंधिक् ते बाहुवीर्यमसंख्ये यान् वाणगणांश्चधिक् ते।
धिक् ते केतुं के सरिणः सुतस्य कृशानुदत्तं च रथं च धिक् ते।।

अर्थात् धिक्कार है तुम्हारे गाण्डीवधनुष को, धिक्कार है तुम्हारी भुजाओं के पराक्रम को, धिक्कार है तुम्हारी इस पवनसुत चित्रांकित ध्वजा को और धिक्कार है अग्निदेव प्रदत्त तुम्हारे इस रथ को। इस प्रकार युधिष्ठिर ने क्या गाण्डीव, क्या अर्जुन का बाहुबल क्या अर्जुन के बाण, क्या ध्वज्, क्या रथ, सभी को धिक्कार दिया। और इसके कारण एक विकट समस्या उपस्थित हो गई। समस्या यह थी अर्जुन ने प्रतिज्ञा कर रखी थी कि यदि कभी युद्ध के प्रसंग में कोई मेरे गाण्डीव धनुष की, मेरे पराक्रम की, बाणों की, ध्वजा रथादि की निंदा करेगा, इन्हें धिक्कारेगा तो मैं (अर्जुन) उस ऐसा करने वाले को जीवत नहीं छोड़ूंगा, और यदि किसी कारण से वह जीवित रह गया (मैं मार नहीं सका) तो मैं (अर्जुन) जीवित नहीं रहूँगा। अब उधर कुआँ और इधर खाई वाली स्थिति पैदा हो गई। या तो युधिष्ठिर मरे या अर्जुन, दोंनों ही स्थितियाँ घातक होंगी। और देखते ही देखते अर्जुन ने युधिष्ठिर का वध करने हेतु तलवार उठाली, प्रहार करने को तैयार हो गया। 'महाभारत' के शब्दों में–

कौन्तेयः श्वेतवाहनः।
असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्मरतर्षमम्।।

स्थिति को तुरन्त संभालते हुए योगेश्वर श्री कृष्ण ने हस्तक्षेप किया और अर्जुन को रोकते हुए पूछा कि अर्जुन तुम्हारे समक्ष इस समय कोई शत्रु उपस्थित नहीं है, फिर तुमने तलवार क्यों उठाई हुई है।

न तं पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भविष्यति।
प्रहर्तुमिच्छसे कस्मात् किं वा ते चित्तविभ्रमः।।

और भी

कस्माद् भवान् महाखड्गं परिगृह्णाति सत्वरः।
तत् त्वां पृच्छामि कौन्तेय कि मिदं ते चिकीर्षितम्।।

आदि–आदि। अर्थात् मैं पूछता हूँ अर्जुन, तुम किस पर प्रहार करने को उद्यत हुये हो। तब अर्जुन उत्तर देता है जिसका संक्षेपण, साराँश यह है।

अन्य स्मैदेहि गाण्डीवमिति..
भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्यु पांशुव्रतं मय।।

अर्थात् जो कोई भी यह कहेगा कि तुम गाण्डीव के योग्य नहीं हो, इसे किसी और को दे दो (अर्थात् मेरे पराक्रम की और गाण्डीव धनुष की निंदा करेगा) तो यह वचन मैं सहन नहीं करूंगा, ऐसा कहने वाले का सर काट दूंगा। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कई बातें समझाईं और बताया कि युधिष्ठिर किसी भी अवस्था में तुम्हारे द्वारा (अर्जुन के द्वारा) वध योग्य नहीं हैं। हाँ एक उपाय है, वे जीवित भी रह जाएंगे और एक प्रकार से उनका वध भी हो जाएगा, तुम उनका वाणी से अपमान कर दो, 'आप' की जगह 'तूकार' से उन्हें संबोधित कर दो। क्योंकि जो बड़े हैं, पूज्य हैं, वृद्ध जन हैं, गुरुजन हैं उनका तो अपमान ही उनकी मृत्यु है–

सम्मानितः पार्थिवोऽयं सदैव त्वया च भीमेन तथा यमाभ्याम्।।

अर्थात् युधिष्ठिर का तुम चारों भाइयों ने सदा सम्मान किया है। अब 'आप' के स्थान पर 'तू' कह दो, समझो कि युधिष्ठिर मर गया–

त्वमित्यत्र भवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम्।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत।।

हे अर्जुन, युधिष्ठिर को 'आप' न कहकर 'तू' कह दो। बस 'तूकार' से गुरुजनों, पूज्यजनों (यहाँ युधिष्ठिर) को 'मर गये' ऐसा समझा। उनका अपमान, उनकी मृत्यु ही है।

समझाने पर अर्जुन मान गये और युधिष्ठिर को 'तू' कहकर संबोधित कर दिया। किंतु इस बात पर अड़ गये कि चूंकि मैंने प्रतिज्ञा का सही पालन नहीं किया, अब मैं (अर्जुन) आत्महत्या करूंगा। तब श्रीकृष्ण ने फिर उपदेश दिया कि अपने गुणों की आप प्रशंसा करना, अपने गुणों का स्वयं बखान करना, व्यक्ति के लिये मृत्यु ही है, अतः हे अर्जुन तुम अपनी प्रशंसा कर लो, तुम्हारी प्रतिज्ञा का पालन हो जाएगा, अर्थात् तुम मृत के समान ही हो जाओगे–

ब्रवीहि वाचाद्य गुणा निहात्मनस्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ।।

हे अर्जुन तुम अपनी ही वाणी द्वारा अपने गुणों का वर्णन करो (आत्म प्रशंसा करो) मान लिया जाएगा कि तुमने अपने ही हाथों अपना वध कर लिया है। अर्जुन ने 'तथास्तु' कहकर अपने गुणों का स्वयं ही वर्णन प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने बहुत ही बुद्धिमत्तापूर्वक दोनों भाइयों को मरने मारने से बचा लिया।

उक्त प्रसंग कोई साधारण प्रसंग नहीं है। मैंने तो बड़ों के अपमान और आत्म प्रशंसा को महज निंदनीय कहा है, 'महाभारत' तो इनको 'मृत्यु' की संज्ञा देता है। पूज्यजनों का यदि अपमान हो गया तो उनके पास रहा ही क्या? वे तो मर गये, क्योंकि नीतिकार भी सही कहता है–

मानो ही महतां धनम्– एक मान ही तो बड़ों के जीवन की जमापूंजी है, वह चली गई तो जीवन का आधार ही नष्ट हो गया समझो। अतः हमें अपने बड़ों का अपमान कभी भूलकर भी नहीं करना चाहिए। आजकल सभी प्रकार के शिष्टाचार की सर्वत्र धज्जियाँ उड़ाई जा रही हैं, वृद्धों को कहीं भी यथेष्ट आदर, मान –सम्मान नहीं दिया,जा रहा, वे बेचारे जीवित होकर भी 'मृत' समान हैं। और उधर चारों ओर आत्म प्रशंसा, अपने गुणों का स्वयं द्वारा ही जोर–शोर से बखान, आत्म विज्ञप्ति की मानो बाढ़ ही आई हुई है। नेता, अभिनेता छुटभैये सब अपने गुणगान में स्वयं ही पूरी शक्ति से लगे हुए हैं। अंग्रेजी की कहावत तो यह कह कर ही Self praise is no re commendation संतोष कर लेती है, किंतु 'महाभारत' तो Self praise को भी मृत्यु की कोटि में रखता है। आशय स्पष्ट है कि आत्म प्रशंसा शिष्टाचार के सर्वथा विरुद्ध है, इससे सामाजिक मर्यादाएं टूटती हैं, व्यक्ति की गरिमा, विश्वसनीयता, प्रामाणिकता को गंभीर क्षति पहुंचती है। आज इसके दुष्परिणाम सबके सामने हैं। किंतु अनुशासन–हीनता, स्वेच्छाचारता, उद्दण्डता के इस दौर में किसे चिन्ता है समाज की, नैतिकता की मर्यादाओं की। और रही–सही कसर पूरी कर दी है लचर कानून– व्यवस्था ने, और कानून को लागू करने के लिये जो दृढ़ इच्छा शक्ति चाहिए उसके घोर अभाव ने। अब स्वार्थी, सत्ता लोलुप, वोट बैंक की घटिया राजनीति करनेवाले गिरगिटिया नेताओं का मुंह न ताक कर हमें स्वयं कटिबद्ध होकर अपने नैतिक मूल्यों, सामाजिक शिष्टाचार और जो राष्ट्र के लिये अत्यन्त आवश्यक हैं उन नियमों तथा अपनी भव्य परंपराओं की रक्षा करनी होगी। इसके लिये जरूरी है कि हम अपनी युवापीढ़ी को अपनी धार्मिक, सांस्कृतिक मान्यताओं का सम्मान करना सिखायें, अपने इतिहास का सही स्वरूप उनको समझायें, उनमें 'स्व' के प्रति रुचि, प्यार, श्रद्धा उत्पन्न करें, ऐसा करेंगे तभी हम और हमारा अस्तित्व बचे रहेंगे, अन्यथा अपनी पहचान भुलाकर, अपनी संस्कृति का दुःखद लोप अपनी आंखों से देखते हुए, पशुओं जैसा अपमानपूर्ण जीवन जीना हमारी नियति होगी। उस दुरवस्था से हमें कोई नहीं बचा सकेगा। पूज्यों का अपमान, आत्मप्रशंसा जैसे दुर्गुण तो दुर्गुणों के महागोदाम में से निकाली हुई एक तुच्छ सी बानगी है, बाकी सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक मृत्यु का भयानक सामान तो अन्दर छुपा पड़ा है, हम सचेत रहें तो बचेंगे अन्यथा बचना मुश्किल है –

इतिहास, धर्म, संस्कृति सब दांव पर लगे हुए हैं। आदर्श, परम्परा, नैतिक मूल्य भी कीचड़ में धंसे हुए हैं। महर्षि की भांति संघर्ष का बिगुल बजाना होगा। चाहे कुछ भी पड़े झेलना इनको तो बचाना होगा।

1607/7 जवाहर नगर, पटियाला चौक जींद 'हरियाणा'

मेरा भगवान् और मैं

● प्रो. रामविचार एम.ए.

मेरा भगवान का अभिप्राय ईश्वर से है और मैं सौ अभिप्राय आत्माओं से है। इस लेख में मैं यह सिद्ध करने जा रहा हूँ कि परमात्मा और आत्माओं में किन गुणों के कारण समानता है, परमात्मा के किन गुणों को आत्माएं किसी अंश तक धारण करती हैं और किन गुणों में कोई भी आत्मा परमात्मा तक नहीं पहुँच सकती।

महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने आर्य समाज का दूसरा नियम बनाया–

ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।

10 गुणों में परमात्मा और आत्माएं समान हैं। इनकी व्यख्या निम्नलिखित है– ईश्वर सत् है, आत्माएं भी सत् हैं। सत् की परिभाषा करते हुए महर्षि ने लिखा है 'यदस्तित्रिषु कालेषु न बाधते तत् सद् ब्रह्म' अर्थात् जो तीनों कालों में विद्यमान है, वह 'सत्' है। परमात्मा भी तीनों कालों में विद्यमान रहता है और आत्माएं भी विद्यमान रहती हैं। परमात्मा चित अर्थात् चेतन है। आत्माएं भी चेतन हैं। परमात्मा निराकार है, अर्थात् सांसारिक वस्तुओं जैसा उसका कोई आकार नहीं। इसी प्रकार आत्माएं भी निराकार हैं। परमात्मा अजन्मा है। उसका जन्म नहीं होता। इसी प्रकार आत्माओं का भी जन्म नहीं होता। परमात्मा का कोई अन्त नहीं है। इसी प्रकार आत्माओं का कोई अन्त नहीं है। दोनों का न आदि अर्थात् आरम्भ है और न अन्त अर्थात् समाप्ति। परमात्मा और आत्माएं दोनों ही निर्विकार हैं। दोनों में कोई परिवर्तन नहीं आता। जैसे दूध में जामन लगाने से दूध दही के विकार (परिवर्तन) को प्राप्त होता है। दही बिलोने से लस्सी बनती है। लस्सी से मक्खन निकाला जाता है। मक्खन का विकार घी के रूप में प्रकट होता है। इस प्रकार परमात्मा और आत्माओं में कोई विकार अर्थात् परिवर्तन नहीं आता। परमात्मा का आदि नहीं अर्थात् उसका जन्म नहीं होता। परमात्मा का अन्त अर्थात् मृत्यु नहीं होती। इसी प्रकार आत्माओं की भी मृत्यु नहीं होती अर्थात् उनका अन्त नहीं होता परमात्मा अजर है अर्थात् उसका कोई शरीर नहीं तो उसपर बुढ़ापा कैसे आएगा ? इस प्रकार आत्माओं पर भी बुढ़ापा नहीं आता। परमात्मा की मृत्यु नहीं होती, क्योंकि वह अमर है। इस प्रकार आत्माओं की भी मृत्यु नहीं होता, क्योंकि वे अमर हैं। परमात्मा नित्य अर्थात् सदा रहने वाला है। आत्माएं भी नित्य अर्थात् सदा रहने वाली हैं। उपर्युक्त दस गुणों में परमात्मा और आत्माएं समान हैं।

आत्माएं परमात्मा के दस गुणों को किसी अंश तक ग्रहण करती हैं, सर्वांश में ग्रहण नहीं कर सकतीं।

परमात्मा आनन्दस्वरूप है। आत्माएं ईश्वरोपासना, समाधि और मोक्ष में उसके आनन्द को किसी सीमा तक प्राप्त कर सकती हैं, परन्तु आनन्दस्वरूप नहीं बन सकतीं। परमात्मा सर्वशक्तिमान है। आत्माएं किसी अंश तक शक्ति प्राप्त करके शक्तिमान बन सकती हैं, परन्तु आत्माएं ईश्वर–तुल्य सर्वशक्तिमान् नहीं बन सकती। परमात्मा पूर्णरूपरेण न्यायकारी है। आत्माएं भी उसके न्याय गुण को धारण करती हैं, परन्तु पुर्णरूपरेण न्यायकारी नहीं हो सकतीं। परमात्मा दयालु है। आत्माएं भी उसके दया गुण को अपनाती हैं, परन्तु आत्माएं सर्वांश में दयालु नहीं हो सकतीं। परमात्मा अनुपम है अर्थात् निराला और अनोखा है। आत्माएं भी कुछ विशिष्ट गण अपनाकर अनुपम हो सकती हैं, परन्तु सर्वांश में अनुपम नहीं हो सकती। परमात्मा सर्वाधार है। आत्माएं किसी अंश तक कुछ प्राणियों का आधार हो सकती हैं। जैसे पति, पत्नी का आधार होता है। पिता, बेटे–बेटियों का आधार होता है। राजा, प्रजा का आधार होता है। स्वामी, सेवकों का आधार होता है परन्तु आत्माएं सर्वाधार नहीं हो सकतीं। परमात्मा सर्वेश्वर अर्थात् अनन्त ऐश्वर्यसम्पन्न है। आत्माएं किसी अंश तक उसके ऐश्वर्य को धारण कर सकती हैं। आत्माएं सर्वांश में ऐश्वर्यवान् नहीं हो सकतीं। महर्षि दयानन्द जी ने ऐश्वर्य के दो अर्थ किये हैं– भौतिक ऐश्वर्य और सत्य विचारशील ज्ञान (प्र. समुम्मास) भौतिक ऐश्वर्य और सत्यविचारशील ज्ञान किसी सीमा तक आत्माओं में आ सकते हैं, सर्वांश में नहीं। परमात्मा सर्वान्तर्यामी है। वह सब के मनों की बातें जानता है। योगिजन भी योगविद्या द्वारा दूसरों के मन की बातें जान लेते हैं, परन्तु सर्वांश में सब के मन की बातें नहीं जान सकते। परमात्मा अभय है। कोई आत्मा उससे अधिक शक्तिमान् नहीं जिससे उसे भय हो। आत्माएं उसके इस गुण को किसी अंश तक अपना सकती हैं, परन्तु सर्वांश में नहीं। परमात्मा पवित्र है। जीवात्माएं भी शुद्धाचरण अर्थात् यम और नियमों का पालन करके पवित्र हो सकती हैं, परन्तु प्रकृति के रजस् और तमस् गुणों से प्रभावित होकर अपवित्र होती हैं। परन्तु कोई आत्मा जीवनमुक्तावस्था और मोक्ष की अवस्था को छोड़कर सर्वथा पवित्र नहीं हो सकती। आत्माएं उपर्युक्त दस गुणों को किसी अंश तक गृहण कर सकती हैं, सर्वांश में नहीं।

कोई भी आत्मा न तो सर्वव्यापक हो सकती है और न ही सृष्टिकर्ता। सर्वव्यापकता और सृष्टिकर्तृत्व–ये दो गुण किसी भी आत्मा में नहीं आ सकते। जीवात्माएं अणु हैं, विभु नहीं हैं। वे एकदेशी हैं, सर्वदेशी नहीं हो सकतीं। कोई आत्मा सृष्टिकर्ता नहीं हो सकती।

मैं और मेरे भगवान के इस प्रकार के संबंध हैं।

569 सैक्टर 6 बहादुरगढ़ जि. झज्झर
(हरियाणा)

वर्ण व्यवस्था तथा जात–पात का प्रभाव

● मामचन्द रिवाड़िया

प्राचीन काल में भारतीय अर्थ व्यवस्था के अन्तर्गत श्रम विभाजन के रूप में वर्ण व्यवस्था स्वीकार की गई थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। समाज का यह चतुर्विभाजन कर्म के आधार पर किया गया था। जिसका स्पष्ट निर्देश 'मनु' ने अपने स्मृति ग्रन्थ में किया है–

1. **मनु के अनुसार ब्राह्मण के कर्तव्य और गुण हैं –** पढ़ना–पढ़ाना, यज्ञ करना–कराना, दान लेना और देना ये छः कर्म हैं।

2. **क्षत्रिय के कर्तव्य और गुण सत्कार हैं –** न्याय से प्रजा की रक्षा अर्थात् पक्षपात छोड़कर श्रेष्ठों का सत्कार और दुष्टों का तिरस्कार करना। विद्या, धर्म की प्रवृत्ति और सुपात्रों की सेवा में धनादि पदार्थों का व्यय करना। वेदादि शास्त्रों का पढ़ना और पढ़ाना विषयों में न फंसकर जितेन्द्रिय रहकर सदा शरीर और आत्मा से बलवान रहना।

3. **वैश्य के कर्तव्य और गुण हैं –** व्यापार करना, कृषि–पशुपालन करके देशवासियों का भरण–पोषण करना, विद्या–धर्म की वृद्धि करने के लिए धनादि की व्यवस्था करना आदि।

4. **शूद्रों के कर्म –** समाज के सब वर्गों की सेवा करना इनका एकमेव मुख्य कर्तव्य है और इसी सेवा के आधार पर अपना जीवन निर्वाह करना।

मनु महाराज की उपरोक्त उक्तियों से यह स्पष्ट है कि प्राचीनकाल में वर्ण विभाजन गुण–कर्म के आधार पर किया गया था। कोई जन्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता, अपितु कर्म के आधार पर होता है। यजुर्वेद के 31वें अध्याय का 11वां मंत्र है। इसमें कहा गया है कि ब्राह्मण अपने गुणों के कारण समाज का मुख होता है। क्षत्रिय अपने रक्षक गुणों के कारण बाहू होता है। वैश्य अपने कृषि आदि कार्यों के कारण समाज का उदर होता है। शूद्र अपने सेवा के कार्यों के कारण पग होता है। जिस प्रकार इन अंगों का शरीर में महत्त्व है उसी प्रकार समाज में इन चारों वर्णों का महत्त्व है।

मनु महाराज ने यह भी लिखा है कि शूद्रकाल में जन्म लेकर अपने कर्म के आधार पर शूद्र, ब्राह्मण–क्षत्रिय, वैश्य भी बन सकता है और ब्राह्मण अपने कर्मों के आधार पर शूद्र भी बन सकता है अर्थात् चारों वर्णों मे जिस–जिस वर्णों के पुरुष–स्त्री अपने–अपने गुण–कर्म स्वभाव के अनुसार होंगे उन्हीं वर्णों में गिने जाएंगे।

इसी तरह का भाव आपत्त धर्म सूत्र में भी व्यक्त किया गया है–धर्माचरण से युक्त वर्ण अपने से उतम वर्ण को प्राप्त कर लेता है और वह उसी वर्ण में गिना जाता है जिसके वह योग्य होता है। वैसे भी अधर्माचरण से युक्त उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है और वह उसी वर्ण में गिना जाता है।

'सत्यार्थ प्रकाश' के तीसरे समुल्लास में लिखा है–ऐसी सुन्दर वर्ण व्यवस्था के रहते हुए भी स्वार्थी एवं अहंकार के वश मदोन्मत हुए ब्राह्मणों ने मिथ्या कल्पना का विस्तार करके नाना प्रकार की जटिलताओं का विकास किया जिसको ब्राह्मणवाद कहते हैं।

प्राचीन काल में गुरुकुल के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। चारों वर्णों के बच्चे साथ–साथ गुरुकुल में विद्या प्राप्त करते थे। विद्या प्राप्ति के बाद जो जैसा होता था उसी वर्ण में जाकर अपना कर्तव्य निभाता था। जब से जन्म के आधार पर वर्ण–व्यवस्था कायम हुई है तब से इस देश में विघटन पैदा हो गया है। ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर ब्राह्मण दुष्टतापूर्ण कार्य करता है फिर भी धर्मानुसार यज्ञ–हवन, पठन–पाठन करता है, फिर भी शूद्र है। इसी से सामाजिक व्यवस्था चरमरा गई है।

आज जात–पात ने हमारे देश के पंगु बना दिया है। जात–पात की राजनीति का देश में बोलबाला है। जात–पात के आधार पर ही बड़े–बड़े नेता बन रहे हैं। हर वर्ग इन्हीं राजनेताओं के पीछे बिना विचारे भाग रहा है। समाज उन व्यक्तियों और संस्थाओं को सम्मान नहीं देता जो प्राचीन वर्ण–व्यवस्था पर आज भी कार्य कर रहे हैं। आज सार्वजनिक जीवन में खोटे सिक्कों का चलन इतना अधिक हो गया है कि अब अच्छे सिक्के यदि कहीं दिखाई भी देते हैं तो वह नकली मालूम पड़ते हैं। आज जो

शेष पृष्ठ 9 पर ☞

भोगवाद-अपरिग्रह

● राज कुकरेजा

आज के दो प्रचलित शब्द हैं Materialism और Consumerism Materialism–भौतिक साधन, Consumerism–भौतिक साधनों का उपभोग करना, भौतिक साधन केवल शरीर को ही ध्यान में रखकर शरीर के लिए सुख–साधनों की सामग्री का उत्पादन करना और उसे जनता तक पहुंचाना, आज के अर्थशास्त्री का मानना है कि अधिक उत्पादन से देश का विकास होता है, लोगों को नौकरियाँ मिलती हैं, बेरोज़गारी की समस्या का समाधान होता है और जी.डी. बढ़ता है तो राष्ट्र की गणना विकसित राष्ट्रों में होती है, जब उत्पादन अधिक है तो उपभोक्ता भी अधिक ही चाहिए, उपभोक्ता को उत्पादन की जानकारी विज्ञापनों द्वारा दी जाती है, विज्ञापनों के अलग–अलग माध्यमों में से दूरदर्शन मुख्य भूमिका निभा रहा है, घर बैठे नए–नए उत्पादनों की जानकारी मिल रही है, उत्पादन कर्ता अनेक हैं, उनमें परस्पर स्पर्धा रहती है और सभी अपने–अपने उत्पादनों की गुणवत्ता बढ़ा–चढ़ा कर ग्राहकों को भ्रम में डाल रहे हैं, उनका मुख्य उद्देश्य ग्राहक को लालायित करना है, उदाहरण के लिए सौन्दर्य प्रसाधनों को ही लें, नित नए–नए उत्पादन बाज़ार में आ रहे हैं और हर कोई चाहता है कि उसका उत्पादन अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचे इसके लिए निम्न स्तर के व अश्लील विज्ञापन देने में जरा भी संकोच नहीं करते, समाज के हर वर्ग पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है, इसकी तनिक भी परवाह नहीं की जाती है।

बड़े शहरों का Mall culture अब छोटे शहरों की तरफ रुख कर रहा है। Mall अर्थात् एक ही छत के नीचे सभी वस्तुओं की उपलब्धि करवाना, ग्राहक को एक दुकान से दूसरी दुकान पर नहीं जाना पड़ता है। उसे दुकानदार से सामान नहीं मांगना पड़ता अपितु स्वयं सामान का चयन करता है। सामान का इस प्रकार प्रस्तुतिकरण किया जाता है कि ग्राहक बरबस उस ओर खिंचा चला जाता है। चाहिए या नहीं, विचार किए बिना आवश्यकता से अधिक ले लेता है। लगता है कि उत्पादनकर्ता मनोवैज्ञानिक है, वह व्यक्ति की दुर्बलता को जानता है कि व्यक्ति में अधिक से अधिक पाने की लालसा, लोभ बना रहता है इसलिए लुभावनी स्कीमें निकाली जाती हैं कि एक के साथ एक मुफ्त, ग्राहक के पास जेब में पैसे नहीं तो क्रेडिट कार्ड और ए.टी.एम. की सुविधा उपलब्ध रहती है, मुख्य उद्देश्य अपने उत्पादन को ग्राहक की झोली में डालना होता है। मनुष्य का स्वभाव है कि जब नकद देना पड़े तो लूँ या न लूँ दस बार सोचता है और उधार के मिले सामान को तुरंत बिना सोचे लेने को तैयार हो जाता है।

आज का बाजार भौतिक साधनों से व्यक्ति को अपनी ओर आकर्षित करता है परन्तु इसको खरीदने के लिए पैसा चाहिए क्योंकि पैसे में ही क्रय–शक्ति केन्द्रित है। आय के साधन सीमित हैं तो इन साधनों को बढ़ाने के प्रयास करता है। इसके लिए रिश्वत, आयकर में चोरी काला बाजारी, सामान में मिलावट और न जाने कितने ही घृणित व्यवसाय करने में संकोच नहीं किया जा रहा है। राजनेता लोग बड़े–बड़े घोटालों में लिप्त हैं, उन्हें अब थोड़े में संतोष नहीं है, समाचार पत्र मुख्य पृष्ठ से अंतिम पृष्ठ तक ऐसे ही समाचारों से भरे मिलते हैं। सब ओर लूट फैल रही है। पैसे के लिए उपद्रव हो रहे हैं। कहीं बैंक लूटे जा रहे हैं, कहीं चोरियां हो रही हैं, राह चलती स्त्रियों के गलों से जंजीरें झपटी जा रही हैं। शिक्षा, चिकित्सा, न्याय जैसे प्रतिष्ठित व्यवसाय भ्रष्टाचार की लपेट में हैं। ये पैसे की भूख भस्मासुर की आग की तरह फैल रही है। संक्षेप में (पुलिस) रक्षक ही भक्षक के रूप में, प्राण रक्षक (डॉक्टर) प्राण घातक के रूप में, उपकारक अपकार के रूप में, अध्यापक अनाचारी के रूप में निर्माता नाशक रूप में, विद्यार्थि अविनीत के रूप में, नागरिक अनागरिक के रूप में परिणत होते जा रहे हैं। व्यक्ति सोचता है कि अधिक से अधिक खाने–पहनने, अधिक जोड़ने और अधिक भौतिक सुख–साधनों के भोग में ही उसका जीवन सार्थक, ये सब नहीं हैं तो उसका जीवन निरर्थक है। अपनी अविद्या के कारण भूल जाता है कि वह भोगों को नहीं भोग रहा, भोग ही उसे भोग रहे हैं, भर्तृहरि के शब्दों में ''भोगा न भुक्ता, वयमेव भुक्ता''–––

भोगवाद समाज को केवल भ्रष्टाचारी ही नहीं बना रहा है, यह तो व्यक्ति को स्वार्थी, संकीर्ण और संकुचित बना रहा है, व्यक्ति आत्म संतुष्ट नहीं है। उसके पास कमी किसी चीज़ की नहीं है, परंतु दूसरों से डाह व ईर्ष्या करता है कि उसके पास उससे अधिक क्यों है, रहने को एक घर है, कार है, परंतु अशांत इसलिए है कि दूसरों के पास दो मकान व दो कारें क्यों? और पाने की लालसा और लोभ का प्रवाह उसे सुख–चैन की साँस नहीं लेने देता। अपनी अज्ञानता के कारण समझता है कि अधिक धन आदि ऐश्वर्य और भौतिक सुख–साधनों की सामग्री उसे सुखी बना देंगे। नादान यह नहीं समझता कि सांसारिक भोगों से कभी वास्तविक नित्यानंद नहीं मिल सकता। भौतिकवाद में पूर्णता नहीं है, सदात्व नहीं है। क्षणिक सुख अवश्य मिल जाता है। और–और पाने की चाह उसे अशांत बनाए रखती है। मेरा यह कहने का अभिप्राय कदापि नहीं है कि व्यक्ति को आधुनिक सुख–साधनों

बड़े शहरों का Mall culture अब छोटे शहरों की तरफ रुख कर रहा है। Mall अर्थात् एक ही छत के नीचे सभी वस्तुओं की उपलब्धि करवाना, ग्राहक को एक दुकान से दूसरी दुकान पर नहीं जाना पड़ता है। उसे दुकानदार से सामान नहीं मांगना पड़ता अपितु स्वयं सामान का चयन करता है। सामान का इस प्रकार प्रस्तुतिकरण किया जाता है कि ग्राहक बरबस उस ओर खिंचा चला जाता है। चाहिए या नहीं, विचार किए बिना आवश्यकता से अधिक ले लेता है। लगता है कि उत्पादनकर्ता मनोवैज्ञानिक है, वह व्यक्ति की दुर्बलता को जानता है कि व्यक्ति में अधिक से अधिक पाने की लालसा, लोभ बना रहता है इसलिए लुभावनी स्कीमें निकाली जाती हैं कि एक के साथ एक मुफ्त, ग्राहक के पास जेब में पैसे नहीं तो क्रेडिट कार्ड और ए.टी.एम. की सुविधा उपलब्ध रहती है, मुख्य उद्देश्य अपने उत्पादन को ग्राहक की झोली में डालना होता है। मनुष्य का स्वभाव है कि जब नकद देना पड़े तो लूँ या न लूँ दस बार सोचता है और उधार के मिले सामान को तुरंत बिना सोचे लेने को तैयार हो जाता है।

का लाभ नहीं लेना चाहिए। लाभ तो अवश्य ही लेना है बड़े–बड़े मॉल में खरीददारी करना, ए.टी.एम. का व क्रेडिट कार्ड के प्रयोग की मनाही की तो बात ही नहीं उठती, परंतु इन साधनों के दुरुपयोग से बचना है, इस बचने का ही नाम है अपरिग्रह।

अपरिग्रह अर्थात् (अ+परि+ग्रह) परि का अर्थ है चारों ओर से, ग्रह का अर्थ है इकट्ठा करना, अ उपसर्ग लगाने से अर्थ हुआ है कि अनावश्यक और हानिकारक पदार्थों का इकट्ठा न करना, इसे दूसरे शब्दों में ऐसा कह सकते हैं कि शरीर के व्यवहार के लिए धन, मकान, वस्त्र, भोजन आदि को अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना। जब अपरिग्रह का पालन करने वाला व्यक्ति अपनी अनावश्यक वस्तुओं को महत्त्व नहीं देता तब सांसारिक वस्तुओं के संग्रह में धन व्यय नहीं करता तो इसका प्रभाव उत्पादन पर पड़ेगा। उत्पादन तो बढ़ेगा ही, क्योंकि जिन के पास अभाव है, अब मंहगाई इतनी नहीं बढ़ेगी तो इस वर्ग के लोग भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे। इसे यूँ कह सकते हैं, कि उत्पादन सीमित लोगों के पास उपलब्ध न होकर सर्व साधारण को भी उपलब्ध होगा और उत्पादन कर्ता अपनी वस्तुओं की गुणवत्ता का भी ध्यान रखेंगे।

सांसारिक सुख का अभिलाषी मनुष्य अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं से अधिक साधनों को इकट्ठा करता है और जो साधनहीन हैं वे इन साधनों से वंचित रह जाते हैं। इकट्ठा करने का प्रभाव मंहगाई को बढ़ाता है। साधनहीन इन्हें क्रय नहीं कर पाते तो समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है। एक अनावश्यक का स्वामी और दूसरा साधनहीन जो लोग अपरिग्रह का पालन करते हैं अर्थात् अनावश्यक वस्तुओं का संग्रह नहीं करते। अपने सुख–साधनों का उपभोग त्याग भाव से करते हैं, वे सदा सुखी व शांत रहते हैं, कहा भी है कि ''खुद कमाओ खुद खाओ'' यह प्रकृति है। दूसरा कमाए तुम छीनकर खाओ, यह विकृति है। खुद कमाओ दूसरों को भी खिलाओ यह भारतीय संस्कृति है।'' वास्तव में उन्नति करते ही ऐसे लोग हैं, क्योंकि ऐसा करने से वे हानिकारक विचारों का भी परित्याग कर देते हैं, जब तक व्यक्ति के मन में हानिकारक अर्थात् अशुद्ध विचार बने रहते हैं, तब तक वास्तविक ज्ञान का विकास नहीं होता, मानसिक दुःख अशुद्ध विचारों से उत्पन्न होता है।

यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह जिस वस्तु में दोष देखता है तो उसका परित्याग कर देता है। अनावश्यक वस्तुओं के संग्रह में जब दोष देखने लगेगा तो अपने स्वरूप को नहीं भूलेगा और सांसारिक हानिकारक वस्तुओं और विचारों में आसक्त नहीं रहेगा। अपनी हानि–लाभ को जान पाएगा तथा सदा स्मरण रखेगा कि भोग ही रोग की जननी है, बुद्धिमान व्यक्ति सांसारिक वस्तुओं के संग्रह में क्षणिक सुख समझता है और जान लेता है कि ये सब नष्ट होनेवाली हैं, इसलिए वह संसार में सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए जिन उत्तम पदार्थों की आवश्यकता होती है, उन्हें धर्मपूर्वक प्राप्त करने का प्रयास करता है, इसलिए हमें सर्वप्रथम अपनी आवश्यकताओं का निर्धारण करना चाहिए। भ्रष्टाचार का मुख्य कारण यही है कि हमारी आवश्यकताएं अनिशचित होती हैं, अनियंत्रित होती हैं और भ्रष्टाचार से बचने का मार्ग है, ''धर्मपूर्वक धनोपार्जन करके उत्तम कार्यों की सिद्धि के लिए लगाये।

भारत की संस्कृति अध्यात्मवाद है, अध्यात्मवाद अर्थात् त्यागपूर्वक भोग करने का मार्ग और यही त्यागपूर्वक भोग ही दूसरे शब्दों में अपरिग्रह है। वेद में ईश्वर का सन्देश भी यही है कि–––**त्यक्तेन भुंजीथा मागृधः**

ओ३म् शान्तिः

786, सेक्टर–8 करनाल

भ्रष्टाचार का भस्मासुर

● डॉ. मदनमोहन जावलिया

भूमिजन और संस्कृति ये तीन उपादान उचित मात्रा में मिलकर राष्ट्र और राष्ट्रीयता का निर्माण करते हैं अथर्ववेद का अध्येता आर्य असंदिग्ध स्वरों में पुकारेगा, 'माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' धरती मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूं। वेद का उपदेष्टा ऋषि कहेगा '**शृण्वन्तु सर्वे अमृतस्य पुत्राः**' अर्थात् " हे अमृत–अविनश्वर परमात्मा के पुत्रों ! आर्यों–आचार–विचार शुद्ध लोगों ! सुनो"। सर्वत्र वैदिक अर्थात् विशुद्ध मानवीय संस्कृति पुकार–पुकार कर आचार की प्रधानता घोषित कर रही है। वेद कहता है कि '**आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः**' आचार रहित मनुष्य का कल्याण उच्चतम ज्ञान–कोष वेद भी नहीं कर सकते। ज्ञान, सिद्धान्त, नियम–निर्देश संविधान सब अत्यन्त आवश्यक हैं परन्तु जब तक वे तदनुरूप शुद्ध व्यवहार प्रयोग–आचरण एवं अभ्यास में नहीं आते और दुराचार–कदाचार, भ्रष्टाचार का ही नंगा नाच होता रहता है तब तक मनुष्य, परिवार–ग्राम, समाज एवं राष्ट्र का बंटाधार ही होता रहेगा।

भारत तथाकथित खंडित स्वाधीनता की तिथि से प्रारंभ कर आज छासठ वर्षों की यात्रा में निरंतर प्रवर्द्धमान विनाश के महागर्त में डूबता चला जा रहा है। लोगों को आर्थिक उन्नति, भौतिक ऐश्वर्य, सुख–सुविधाओं–वैज्ञानिक साधनों एवं शिक्षा तथा सभ्यता के विविध मनोहारी, लुभाने–ललचाने वाले दृश्य अवश्य देखने को मिल रहे हैं किंतु यदि इस प्रगति का मानवीय उदारता–सामाजिक समरसता एवं राष्ट्रीय अखण्डनीय ऐक्य की दृष्टि से विश्लेषण किया जाए तो हमारी उपलब्धियों का ग्राफ निम्नतम स्तर पर होगा। विचार एवं चिंतन की अन्य दिशाओं को परे रखकर मात्र राष्ट्र के मूलाधार आचार की दृष्टि से विचार करने से निम्नांकित निष्कर्ष परिलक्षित होते हैं।

भारत आज भ्रष्टाचार के दावानल में झुलस रहा है। सरकार और उसकी छोटी से छोटी पोस्ट को दबाकर बैठा हुआ 'जनसेवक' कर्मचारी भ्रष्ट आचरण द्वारा अतिरिक्त ऊपर की आमदनी चाहता है। उसके लिये पूर्ण समर्पण–भाव से लगा रहता है। कर्मचारी की जात आंदोलन करते समय मंचों से दहाड़ते समय अपनी गरीबी एवं व्यावहारिक पवित्रता का रोना रोती है परंतु अपने ही विभाग के, नहीं–नहीं अपने ही संस्थान के अपने ही साथी के सरकार में अटके हुए काम को निष्पादित कराने में प्रकट/अप्रकट में पैसा चाहती है– मांगती है अन्यथा कलम–कसाई बनकर रोड़ा या रोड़ी बन जाती है। खाने–खिलाने वाले खिला–पिला कर जो अवशिष्ट राशि का फल मिलता है उससे संतुष्ट हो जाते हैं विधि का विधान समझते हैं और कार्य संपादन में सहयोगी बाबू के अहसानमंद रहते हैं।

बाबू लोगों और अधिकारियों की एक खाने–पीने वाली शृंखला होती है। परस्पर का काम करने वाली और अर्थ लाभ में हिस्सेदार चोरों की टोली और वे बड़े 'प्रतिष्ठित' माने जाते हैं क्योंकि गरजमंदों की दृष्टि में वही व्यक्ति प्रतिष्ठित है जो पैसा खाकर भी काम तो कराता है। और जो न खाते हैं और काम भी नहीं करा सकते वे कितने ही भले सज्जन एवं सक्षम हों–उनकी दृष्टि में निकम्मे होते हैं। पटवारी दो पैसे की सीट पर बैठा है परंतु कलक्टर से बड़ा होता है। किसानों, उद्योगपतियों का सम्मानित। वह नामान्तरण अनापत्ति प्रमाण–पत्र, पंजीयन, भूमि–हस्तान्तरण–व्यपवर्तन (या रूपान्तरण) आदि सर्वत्र मास्टर चाबी का काम करता है। सब काम करनेवाले अधिकारी और कर्मचारी उसी सीढ़ी पर से अपनी जेब गर्म करते हैं। भूमि संबंधी वकील– दलाल सबका काम उसी से सरल होता है। जो जितना बड़ा आसामी उतनी ही उससे फीस–एक बार से उसका पेट नहीं भरता, अलग–अलग छोटे–छोटे काम गिनाकर गिनाये हुए से मुकरकर वह उद्योग स्वामियों से जिनके पास न समय न जरिया तथा जो स्वयं अनीति से पैसा बचाकर नियम–विरुद्ध काम करते हैं। उनकी वह ढाल बनकर मदद करता है।

जिला उद्योग केंद्र का हर बाबू–चपरासी–अधिकारी उद्योगों से लाखों–करोड़ों कमाता है। सरकार अर्थात् जनता की सम्पत्ति को नुकसान पहुंचाता है। विद्युत् मंडल वाले भी सामान्य उपभोक्ता नागरिक से नया कनेक्शन लगाते समय बकाया राशि के बढ़ जाने पर कनेक्शन काटने की धमकी देकर या उद्योगों को अनधिकृत रूप में अधिक उपभोग करने की मौन–स्वीकृति देकर हैसियत के अनुसार अधिकारी से लेकर लाइनमैन तक लाखों से लेकर हजारों एवं सैकड़ों तक डकारते रहते हैं। मजदूरों–कर्मचारियों की भविष्य निधि, कर्मचारी राज्य बीमा, सांख्यिकी आदि विभागों के अधिकारियों–कर्मचारियों आदि द्वारा लूट से प्राप्त धनराशि द्वारा उद्योगों के नियम विरुद्ध कार्यों को नियम सम्मत कर दिया जाता है।

उद्योगपतियों को वित्त निगम से ऋण चाहिए तो महीनों नहीं वर्षों तक जूते घिसाएंगे–दस अफसरों, कर्मचारियों की नालियों में बहता हुआ सीमेंट दस–बीस प्रतिशत तक 'उड़न' में जाकर बोरियों अर्थात् उद्योगपतियों के पास पहुंचेगा। यही ऋणदात्री समितियों, सहकारी बैंकों, कृषि ऋण देनेवाले राष्ट्रीयकृत/राष्ट्रीयकृत बैंकों का है। नगर विकास न्यास, सार्वजनिक निर्माण विभाग, आवासन मंडल, हैंडलूम कार्पोरेशन आदि सभी सरकारी–अर्द्धसरकारी स्वायत्रशासी विभागों का है। हमाम में सब नंगे हैं। पोस्ट आफिस का बाबू अधिकारी मनीऑर्डर–रजिस्ट्री आदि की अधिक संख्या देखकर या पोस्टमैन भी दीवाली पर तो मिठाई और नकद दोनों चाहेगा–चाहे।

पुलिस विभाग कभी 'आरक्षी विभाग' भी कहलाने लगा था। 'मेरे योग्य सेवा' इनका आदर्श है। सिपाही को 'आरक्षक' भी लिखा बोल जाता है जिसका अर्थ होता है सब ओर से रक्षा करने वाला। परंतु जो स्वयं जनता में से मुर्गे नहीं फांस सकता उसे सिपाही बनने, निरीक्षक या उप अधीक्षक/अधीक्षक बनने का अधिकार नहीं है। माता–पिता–गुरु–नारी–अबला–सबला उसका कोई अपना नहीं होता। जो पुलिसिया सिपाही/ कर्मचारी, अधिकारी प्रतिदिन सायंकाल कुछ ऊपर की आमदनी नहीं लाता, वह पत्नी के समक्ष भी मर्दानगी नहीं जता सकता। किसी की हत्या हुई हो, चोरी हो–लड़की भगी हो–वह उन दुखियारों से भी खासी रकम हड़पने से बाज नहीं आता। और काम के नाम पर केवल उनका है जो पेट मन आत्मा को तृप्त कर दे।

जनता में सर्वत्र आपको भ्रष्टाचारी दिखाई देंगे। आंखें खुली रखो, हृदय शुद्धाचरण वाला और हाथ–पैर भी तब आपको ये अच्छी तरह नजर आएगे। भ्रष्ट को भ्रष्ट लोग नहीं दिखाई दे सकते। मानसिक–सामाजिक–आचरणगत वातावरण का प्रदूषण सर्वत्र व्याप्त है। टेम्पो वाला 'श्रमिक' कहलाएगा। 25–25 तक पुरुष–बकरों को भरेगा। पुलिस को खिलाएगा। आयकर देने का प्रश्न नहीं–घासलेट मिला पेट्रोल जलाएगा– धुँआ उड़ाएगा–लोगों को बस्ती को जहर से भरेगा। मजदूर कारखानों में सुपरवाइजरों के साथ हँसी–मजाक करेगा–बाहर खुले में गप्पें हांकेगा–सर्वोच्च अफसर आएगा तब आएगा–फिर उत्पादन का लक्ष्य कहां? जबकि वेतन–ओवर टाइम, बोनस विशेष प्रेरणा राशि–मिठाई–बच्चों की पुस्तकों आदि के लिये अनुदान, बिना ब्याज ऋण, एडवान्स पी.एफ., कर्मचारी राज्य बीमा आदि सब लाभ चाहिए। वह शराब पीएगा–सब दुर्व्यसन करेगा–दिन में दस बार चाय–पिशाची का सेवन करेगा–घर की लक्ष्मी तथा बाल गोपाल को 'भूखों मारेगा' स्वयं गरीब होने का ढिंढोरा पीटेगा। राजनीतिक दल उसके चरित्र–खान–पान–स्वास्थ्य–संस्कार, शिक्षा पर ध्यान क्यों देंगे ? उन्हें तो उनकी संगठित शक्ति से देश की सत्ता जो हथियानी है। तुलना कीजिए ग्रामीण छोटे किसानों से जिनका खान–पान–वेशभूषा–निर्व्यसनी–फैशनविहीन तथा औद्योगिक श्रमिकों की वार्षिक आय से एक चौथाई भी नहीं होती। वह समाजवाद कहां है जो इस मंहगाई के नाम पर आर्थिक उदारीकरण का शिकंजा कसती हुई लोगों की रोटी छीन रहा है। सुख–सुविधाओं को पलीता बना रहा है। और देशद्रोही काश्मीरी या उत्तरपूर्वी आतंककारियों का पुनर्वास कर रहा है। जिनके कारण अरबों–खरबों की राशि रक्षा एवं दंड व्यवस्था पर खर्च हो रही है। सरकार मंहगाई बढ़ाती है–बड़े उद्योगपतियों को खुली छूट देती है। विदेशी कंपनियों को देश में लाकर जनता का सादा जीवन व्यतीत करने की परिस्थितियों में आग लगाती है। बड़े–बड़े होटल, नये–नये सैकड़ों कैसिनो अर्थात् सैक्स, शराब, मांस, जुआ और तस्करी उद्योग के मनोरंजन पार्क बड़े सभ्याभिमानी देशों यूनान, कम्बोडिया, रूस, इजराइल, फिलीपाइन्स और अब भारत में इन्हीं कांग्रेसी सत्ताधीशों एवं अर्थशास्त्रियों तथा अफसरों की मिलीभगत से स्थापित होते जा रहे हैं।

भ्रष्टाचार को देश के मानचित्र से उखाड़ फैंकने का व्रत लेने वाले टी.एन.शेषन तथा खैरनार के पर कतरने वालों की ही जीत होगी। राष्ट्रद्रोही लोगों से एके 56 राइफल लेकर तथाकथित आत्मरक्षा तत्पर संजय दत्त के चहेते राष्ट्र के लिये नहीं उसके बंदी होने पर आठ–आठ आंसू रोएगे और जमानत पर छूटने पर दीपोत्सव मनाएगे। भ्रष्टाचारी लोग नवीन प्रोपेगैण्डा से देवत्व प्राप्त करने वाले सांई बाबा के भक्त हो सकते हैं– राम तथा कृष्ण और दयानन्द के नहीं। भ्रष्टाचार से क्षत–विक्षत राजनीतिक पार्टियों, अफसरों, बाबुओं–श्रमिकों, तथाकथित धार्मिकों, नागरिकों एवं उद्योगपतियों तथा सत्ताधीशों को दंडित करने एवं सुधारने के लिये क्रांतिकारी राष्ट्रीय उदात्त सांस्कृतिक आंदोलन एवं शासन सत्ता ही सक्षम है जिसे निकट भविष्य में अस्तित्व में आना ही चाहिए।

252, चंपा नगर, गुर्जर की थड़ी
न्यू सांगानेर रोड, जयपुर (राज.) 302019

शिष्टाचार

● नरेन्द्र आहूजा 'विवेक'

मनुष्य का आचरण एक दर्पण के समान है जिसमें उसका प्रतिबिम्ब साफ दिखाई देता है। उसके शिष्टाचार से पता चलता है कि वह कुलीन है अथवा अकुलीन। जिस प्रकार एक साफ गिलास में यदि गंदा पानी भर दिया जाए तो भी वह पीने योग्य नहीं हो सकता ठीक उसी प्रकार सुन्दर शरीर होने के बावजूद यदि मनुष्य का आचरण शिष्ट नहीं है तो वह सम्मान नहीं पा सकता। शिष्टाचार मनुष्य के आंतरिक सौन्दर्य का पैमाना है। शास्त्र पढ़कर ज्ञान होने पर भी यदि उस पर आचरण ना किया जाए तो उस ज्ञान का कोई लाभ नहीं वस्तुतः वह पढ़ा–लिखा मूर्ख है। विद्वान वही है जो पढ़े और सुने हुए वेदादि शास्त्रों के अनुकूल शिष्ट आचरण करता है। वेदादि शास्त्रों को पढ़े, चिंतन–मनन करे लेकिन उस एक बार पढ़कर चिंतन–मनन किए ज्ञान पर आचरण बार–बार लगातार करे। शिष्टाचार केवल किताबों में पढ़कर सपनों में नहीं सीखा जा सकता उसे तो मनुष्य अपने जीवन में हर बार लगातार करते हुए यथार्थ की कठोर शिलाओं पर घिसकर मूर्त्त रूप देता है।

शिष्टाचार मनुष्य जीवन का एक अत्यंत आवश्यक अंग है इसलिए जीवन में प्रगति के लिए इस धारण अत्यंत आवश्यक है। धर्मसूत्र में शिष्ट के लक्षण लिखते हुए कहा गया है –

शिष्टाः खलु गिमत्सराः, निरंहकाराः कुम्भीधान्या अलोलुपाः, दम्भ दर्प लोम मोह क्रोध विवर्जिताः।

अर्थात् धर्मसूत्र के अनुसार शिष्ट उन्हें कहते हैं जिनमें ईर्ष्या, अभिमान, धनसंग्रह की इच्छा, लालच, दम्भ, दर्प, लोभ, मोह, क्रोध नहीं होता। मनुष्य के शिष्टाचार से उसके गुणों, शिक्षा, रुचि और सभ्यता का पता चलता है। महान दार्शनिक देव दयानन्द स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में शिष्टाचार और शिष्ट को परिभाषित करते हुए लिखते हैं ''शिष्टाचार जो धर्माचरण पूर्वक, ब्रह्मचर्य से विद्या ग्रहण कर प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से सत्य, असत्य निर्णय करके सत्य का ग्रहण, असत्य का परित्याग करना है, यही शिष्टाचार है और जो इसको अपने जीवन में करता है वह शिष्ट कहलाता है।'' शिष्टाचार मानव द्वारा जीवन में अपनाने योग्य आचरण है। एक सामान्य व्यवहार भी यदि हम जीवन में पालन करें तो शिष्ट बन सकते हैं। जिस प्रकार का व्यवहार हम अपने लिए दूसरों से अपेक्षित करते हैं वैसा शिष्ट व्यवहार और आचरण हम स्वयं दूसरों के साथ किया करें।

जिस प्रकार यज्ञ की अग्नि और धुआँ ऊँचाई की ओर जाता है और सभी को लाभान्वित करता है उसी प्रकार मनुष्य अपने जीवन में शिष्टाचार और त्याग की अग्नि प्रज्ज्वलित करके सद्कर्मों की आहुति देते हुए अपनी कीर्ति को बढ़ा सकता है। शिष्टाचार बुरे लक्षणों को नष्ट करता है और इससे कीर्ति और आयु बढ़ती है। केवल शास्त्रों की पुस्तकें पढ़ने से कुछ नहीं सीखा जा सकता जब तक कि उस पढ़े या सुने हुए वेदादि शास्त्रों के ज्ञान को शिष्टाचार के रूप में जीवन में आचरण में ना अपना लिया जाए। इसीलिए वेद भगवान का आदेश भी है।

सं श्रुतेन गमेमहि। मा श्रुतेन विराधिषी।।

शिष्टाचार के लिए कोई पहले से तैयार राजपथ नहीं है। माता–पिता और आचार्य शिष्टाचार सिखाने के कारखाने हैं इससे विद्या पाकर परिस्थिति के अनुसार शिष्ट आचारण करने वाला बालक ही ज्ञानी बनता है। आर्य संस्कृति तो शिष्टाचारियों के उदाहरणों से भरी पड़ी है। मर्यादासस पुरुषोत्तम श्रीराम, योगेश्वर कृष्ण वर्तमान काल में महर्षि देव दयानन्द सरीखे अनुकरणीय जीवन हमारे समान हैं। हम सभी इनके जीवन वृत्तांत से सीख लेकर अपने जीवन में शिष्टाचार के उन गुणों को धारण करके जीवन यापन करते हैं तो निश्चित रूप से अपने शिष्टाचार के कारण जीवन में सदैव सफल होंगे।

502 जी एच 27
सैक्टर 20 पंचकूला

☞ *पृष्ठ 3 का शेष*

घोर घने जंगल में

शरीर बर्फ की भाँति ठंडा है। उसने माथा पीट लिया। घर में शोक छा गया। दुकान से पिता भी दौड़े–दौड़े आये। डॉक्टर, वैद्य, हकीम भी आये। सबने देखा। सबने कहा, "यह तो समाप्त हो चुका है। इसमें कुछ शेष नहीं।"

घर में रोना–पीटना आरंभ हो गया। रोनेवालों की चीखों से घर की दीवारें गूँज उठीं। मुहल्ले वाले भी आए। सब रो–रोकर शोक प्रकट करने लगे। सब कहने लगे, "देखो, कितना अच्छा हो गया था वह युवक! जब से साधु के पास गया तब से जैसे इसका जीवन ही बदल गया था। सबके साथ मीठा बोलता था। सबके काम आता था। सबकी सहायता करता था और अब...."

परन्तु कब तक रोते वे लोग! मुहल्लेवालों ने कहा, "रोना तो सदा का है, परन्तु अब तो यह मिट्टी है। उठाओ इसे, ले चलो श्मशान अन्यथा बदबू उत्पन्न हो जाएगी।"

तब होने लगी तैयारी। सारा सामान आ गया। शरीर को नहला दिया गया। कफ़न भी ओढ़ा दिया गया। अर्थी पर रखने लगे तो माँ को बेटे की बात याद आई। रोती हुई बोली,"अरे ठहरो!" उसने कहा था, 'मुझे श्मशान ले जाने से पहले मेरे गुरु को बुला लेना।"

कुछ लोग जंगल की ओर दौड़े। साधु के पास पहुँचे; बोले, "आपके पास वह युवक आता था न? चलिए उसका देहान्त हो गया है।"

साधु ने कहा, "देहान्त? क्या कह रहे हो तुम लोग?"

वे लोग बोले, "सत्य कहते हैं बाबा! वस्तुतः उसका देहान्त हो गया है। घर में कुहराम मचा हुआ है। उसकी अर्थी को श्मशान लेजाने की तैयारी हो चुकी है। चलकर देखो।"

महात्मा ने कहा, "अच्छा चलो मैं देखता हूँ।" और अपनी कुटिया में जाकर वे एक पुड़िया उठा लाए। इस पुड़िया में उन्होंने मिसरी पीसकर बाँध रक्खी थी। मिसरी की पुड़िया लेकर वे युवक के घर पहुँचे तो देखा कि चीखों से सारा घर ही नहीं, मुहल्ला भी गूँज रहा है।

महात्मा बोले, "देखो, थोड़ी देर के लिए यह रोना बन्द कर दो। मैं इसका गुरु हूँ, मुझे देखने दो इसे क्या हुआ है?" सब लोग चुप हुए तो महात्मा ने कफ़न उठाकर उस युवक को देखा। उसे हाथ से टटोला, बोले, "मर तो यह गया है परन्तु अभी एक आशा शेष है। यदि कोई व्यक्ति साहस करे तो यह जीवित हो सकता है।"

सब लोगों ने एक–साथ कहा, "जीवित हो सकता है! कैसे?"

महात्मा बोले, "देखो, यमराज के दूत यहाँ विद्यमान हैं। वे अपनी बलि लेंगे अवश्य। यदि कोई दूसरा व्यक्ति इसके स्थान पर अपनी जान देने को तैयार हो तो मैं यम के दूतों से कह सकता हूँ कि वे उसको ले जाएं, इस युवक को नहीं।" और अपने झोले से मिसरी की पुड़िया निकालकर वे बोले, "मेरे पास यह विष की पुड़िया है। कोई भी व्यक्ति इसे दूध में घोलकर पी ले तो वह मर जाएगा। वह युवक जीवित हो जाएगा।"

सब लोग एक–दूसरे का मुँह देखने लगे। महात्मा ने कहा, "माँ! ओ इस युवक की माँ! तू जो अभी कह रही थी कि 'तेरे स्थान पर मेरे प्राण निकल जाएं। मैं मर जावाँ पुत्रा, तू जीवंदा रेंदा।' यह पुड़िया तू ही दूध में डालकर पी ले।"

माँ ने कहा, "मैं मर तो जाऊँ। मेरा एक ही पुत्र है; इसके लिए नहीं मरूँगी तो किसके लिए मरूँगी? परन्तु पहले मेरी जन्मपत्री मँगवाकर देख लो, यदि मेरे भाग्य में और सन्तान उत्पन्न होना लिखा है तो फिर काहे को मरूँ।"

महात्मा ने युवक के पिताजी की ओर देखकर कहा, "लाला जी! यह माँ तो नहीं पीती। आप ही इस विष को पी लीजिए। आप जो इतना रोते–पीटते हैं, अपने बेटे से आपको प्यार भी है, इसके वियोग में दुःखी हुए जाते हैं, तो लो, पियो यह विष। तुम्हारा पुत्र अभी जीवित हो जाएगा।"

लाला जी बोले, "पी तो लूँ, परन्तु मेरा व्यापार बहुत फैल गया है। इसे सँभालने वाला कोई नहीं, इसलिए विष पी नहीं सकता।"

महात्मा युवक की पत्नी को सम्बोधित करके बोले, "अच्छा देवी! ये दोनों तो नहीं पीते, तू ही यह विष पी ले।" पत्नी ने हाथ जोड़कर कहा, "मैं पीने को तैयार हूँ महाराज! परन्तु मेरी कोख में इस मरने वाले का चिह्न है। मेरे साथ यदि आप उसे भी मारना चाहते हैं तो लाइए मैं विषपान कर लेती हूँ। परन्तु इसका निर्णय आप कीजिए कि मुझे ऐसा करना चाहिए या नहीं।"

महात्मा बोले, "नहीं, तुझे ऐसा नहीं करना चाहिए। परन्तु जब कोई भी इस विष को पीने के लिए तैयार नहीं तो फिर वह जियेगा कैसे? अच्छा दूध तो लाओ। मैं सोचता हूँ कौन पीएगा?"

जब वे इस प्रकार बातें कर रहे थे तो मुहल्लेवाले एक–एक करके खिसक रहे थे। प्रत्येक व्यक्ति डर रहा था कि मेरी बारी न आ जाएं।

दूध आया। महात्मा ने मिसरी की पुड़िया उसमें घोल दी। लोगों की ओर देखा। कितने ही लोग उठकर चले गये। भीड़ बहुत छँट गई। महात्मा बोले, "जब कोई नहीं पीता तो शायद मुझे ही यह पीना पड़ेगा।" एक–साथ कितने ही लोगों ने कहा, "हाँ–हाँ महाराज! आप पी लो। आप पी लो!"

(आर्यसमाज का हॉल हँसी से गूँज उठा। कितनी ही देर तक लोग हँसते रहे।)

युवक की माँ ने कहा, "आप तो महात्मा हैं, साधु हैं, आप ही पियो।" युवक के पिता ने कहा, "साधु–सन्तों का तो जीवन ही दूसरों के लिए होता है महाराज जी! आप ही कृपा करो।" अर्थात् आप ही मरो, हमें मरने का अवकाश नहीं। हाँ भाई! साधु का जीवन ही दूसरों के लिए है:

तरुवर फले न आपको, नदी ने पीवे नीर।
परमारथ के कारने, साधुन धरा शरीर।।

वृक्ष अपने लिए फल उत्पन्न नहीं करता। नदी स्वयं अपना पानी नहीं पीती। साधु और सन्त दूसरों के कल्याण के लिए शरीर धारण करते हैं, दूसरों के लिए इसका त्याग करते हैं। इसलिए पियो महाराज! आप ही पियो। आप ही मरो।

(हॉल में बैठे हुए सभी लोग हँसी से लोट–पोट हुए जाते थे, तभी स्वामी जी घड़ी देखकर बोले।)

लो भाई, साढ़े नौ बज गये, शेष कल सुनाएंगे।

शेष अगले अंक में....

स्वामीजी का पादरियों व मौलवियों से सिद्धान्तिक वार्तालाप

● खुशहाल चन्द्र आर्य

चाँदपुर मेला जो 20 मार्च सन् 1876 में भरने वाला था, उसमें शामिल होने के लिए स्वामी दयानन्द 19 मार्च को ही चाँदपुर आ गये और मौलवी व पादरी भी अपने दल-बल सहित बड़ी धूम-धाम से आ पहुंचें। दर्शकों की संख्या भी पचास सहस्त्र से ऊपर हो गई थी।

20 मार्च को सवेरे साढ़े सात बजे पण्डित, मौलवी और पादरी सभी सभा मण्डप में आ गये और यथायोग्य कुर्सियों पर बैठ गये। बात की बात में वह विशाल मण्डप दर्शकों से ठसाठस भर गया। उस समय, श्री मुक्ताप्रसाद जी ने अपने भाई प्यारे लाल जी की ओर से निम्नलिखित पाँच प्रश्न सब धर्मावलम्बियों के आगे रखकर उनका उत्तर माँगा।

(1) सृष्टि को ईश्वर ने किस वस्तु से, कब और क्यों रचा ? (2) ईश्वर सर्वव्यापक है या नहीं ? (3) ईश्वर न्यायकारी और दयालु किस प्रकार है ? (4) वेद, बाईबल और कुरान के ईश्वर-वाक्य होने में क्या युक्ति है? (5) मुक्ति क्या वस्तु है और किस प्रकार प्राप्त हो सकती है?

मुक्ताप्रसाद जी जब प्रश्न उपस्थित करके बैठ गये तो थोड़ी देर, इस बात पर ही झगड़ा होता रहा कि पहले कौन बोले। अन्त में पादरी स्काट महाशय उठे और प्रथम प्रश्न पर कहने लगे। कि यद्यपि, यह निकम्मा प्रश्न है, मेरी सम्मति में इस पर बोलना समय ही गंवाना है, तथापि इसका उत्तर देता हूँ। पादरी महाशय के उत्तर का सार यह था कि ईश्वर ने सृष्टि को नास्ति से बनाया है। उसके बनाने में बरसों का हमें ज्ञान नहीं। संसार के सुख के लिये सृष्टि रची गई है।

फिर पहले प्रश्न पर मौलवी महाशय ने कहा कि ईश्वर ने सृष्टि को अपने स्वरूप से बनाया है। कब बनाय । यह प्रश्न व्यर्थ है। हमें रोटी खाने से प्रयोजन है, न कि यह कब पकी थी इससे। सारी वस्तुएं ईश्वर ने मनुष्य के लिए रची हैं और मनुष्य को अपनी स्तुति कराने के लिए निर्माण किया है।

अपने-अपने कथन में पादरी और मौलवी एक-दूसरे को कटुवचन कहते रहे। पर जब श्री स्वामी जी महाराज ने बोलना आरम्भ किया तो सबको सम्बोधन करके बोले,"यह मेला सत्य की जिज्ञासा से लगाया गया है। यह सबको निश्चयपूर्वक जानना चाहिए कि विजय सत्य की ही हुआ करती है। हम सबका यह कर्तव्य कर्म है कि परस्पर के मेल-मिलाप से असत्य का खण्डन और सत्य का मण्डन करें। सत्या सत्य के निर्णय के लिए वैर विरोध छोड़कर सम्वाद करना विद्वानों का धर्म है। कठोर और कटु वचन बोलना सभ्याचार के सर्वथा प्रतिकूल है।

पहले प्रश्न के उत्तर में महाराज ने कहा कि "सृष्टि को परमात्मा ने अव्यक्त प्रकृति से बनाया। वह परमाणु रूप प्रकृति जगत् का उपादान कारण है और आदि तथा अन्त से रहित है। अभाव से किसी वस्तु का भाव नहीं हो सकता। जैसे गुण कारण के होते हैं वैसे ही कार्य के भी हुआ करते हैं। इसलिए यदि जगत् का कारण नास्ति मानें तो कार्य को भी नास्ति रूप ही मानना पड़ेगा।"

महाराज ने यह भी कहा,"यदि, यह माना जाए कि ईश्वर ने सृष्टि को अपने स्वरूप से रचा है तो जगत् भी ईश्वर रूप ही सिद्ध होगा। जैसे घड़ा मिट्टी से पृथक नहीं हो सकता, ऐसे ही जगत् और ईश्वर भी एक ही ठहरेंगे। फिर तो चोर, हत्यारा और पापात्मा होने का आरोप परमात्मा पर ही हो जाएगा। इसलिए जो लोग जगत् के कारण प्रकृति को परमात्मा से पृथक नहीं मानते उनका मत प्रमाण-प्रतिकूल और युक्ति शून्य है।

सृष्टि कब बनी, इसका उत्तर भी अन्य मतावलम्बियों के पास नहीं है। हो भी कैसे ? जबकि किसी मत को चले अठारह सौ, किसी को तेरह सौ, किसी को सात सौ और किसी को पांच सौ वर्ष बीते हैं। इसका उत्तर तो हम आर्य लोग ही दे सकते हैं। क्योंकि हमारा ही धर्म सृष्टि के आदि में प्रवृत्र हुआ है। युगों का ब्योरा वर्णन करते हुए महाराज ने कहा कि प्रत्येक शुभ कर्म में आर्य" पण्डित जो संकल्प का पाठ उच्चरण करते हैं, उसमें सृष्टि के आदि से आज तक वर्षों, मासों, दिनों और तिथियों की गणना विद्यमान है। उस संकल्प के साथ आर्यजन सृष्टि के जन्म के इतिहास को अनविच्छिन्न रूप से ले आये हैं।

सृष्टि के रचने का प्रयोजन वर्णन करते हुए श्री महाराज ने कहा," जीव और जगत् का कारण, स्वरूप से अनादि है और कार्य जगत् तथा जीवों का कर्म प्रवाह से अनादि है। जब सृष्टि का प्रलय हो जाता है तो उस समय भी जीवों के कुछ कर्म शेष रह जाते हैं। उन कर्मों का फल-भोग प्रदान करने के लिये न्यायकारी ईश्वर सृष्टि की रचना करता है। सृष्टि को रचने की शक्ति ईश्वर में स्वाभाविक है। उसने अपने सामर्थ्य से, इसलिए सृष्टि निर्माण की है कि लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करके सुख उपलब्ध करें।

जब महाराज ने अपना कथन समाप्त किया तो उनके पक्ष पर मौलवियों और पादरियों ने कुछ शंकाएं की, जिनका उन्होंने उसी समय सन्तोषजनक समाधान कर दिया।

महाराज के उत्तर देते समय सारी सभा में सन्नाटा छा रहा था। सभी-जन प्रभावित हो रहे थे। ये सब बातें उस सभा के लोगों ने पहले सुनी ही न थीं। उनको यह भी ज्ञान था कि आर्य धर्म में भी कोई ऐसा वीर हो सकता है, जो दूसरे मतवादियों को जीतकर दिखाये। इसलिये दर्शक लोग आश्चर्यमय हो जाते थे। आर्य दर्शकों के हृदय तो प्रसन्नता देवी के क्रीड़ा-केतन बन रहे थे। उस समय, सर्वत्र श्री स्वामी जी का ही यशोगान हो रहा था।

दिन के ग्यारह बजे कार्यवाही समाप्त हुई। सभी मतों के प्रतिनिधि अपने-अपने तम्बुओं में चले गये। फिर दोपहर के पश्चात् एक बजे सभा लगी और सबने मिलकर यह स्थिर किया कि समय बहुत अल्प है, अन्य विषयों को छोड़कर केवल मुक्ति पर ही विचार किया जावे। पर उस समय पादरियों और मौलवियों में से कोई भी पहले बोलना न चाहता था। उनको यह भ्रम हो गया था कि सवेरे हमारा पक्ष इसलिए निर्बल सिद्ध हुआ कि हम पहले बोले थे।

जब कोई न उठा तो महाराज ने उठकर कहा, "मुक्ति छुट जाने का नाम है। जितने भी दुःख हैं उनसे छूट कर सच्चिदानन्द परमात्मा को प्राप्ति से सदानन्द में रहना और फिर जन्म-मरण में न गिरना मुक्ति है। स्वामीजी ने यहाँ मुक्ति की अवधि बताना कोई जरूरी नहीं समझा। इसके पीछे महर्षि कारण यह बतलाते हैं कि मुक्ति शुभ कर्मों का फल है। जब शुभ कर्म करने की कोई अवधि या सीमा होती है तो फल की भी कोई अवधि या सीमा होनी चाहिए।

महर्षि बताते हैं कि "मुक्ति का पहला साधन सत्याचरण है, दूसरा वेद-विद्या का ठीक रीति से लाभ करना और सत्य का पालन करना है। तीसरा सत्य पुरूषों और ज्ञानी जनों का सत्संग करना। चौथा योगाभ्यास द्वारा अपनी इन्द्रियों और आत्मा को असत्य से निकालकर सत्य में स्थापन करना। पांचवां ईश्वर की स्तुति करना, उसकी कृपा का यश वर्णन करना और परमात्मा कथा को मन लगाकर सुनना। और छठा साधन, प्रार्थना है। प्रार्थना इस प्रकार करनी चाहिए, हे जगदीश्वर कृपानिधे ! हमारे पिता ! मुझे असत् से निकालकर सत् में स्थिर करो। अविधान्धकार और अधर्माचरण से पृथक करके ज्ञान और धर्माचरण में नियुक्त करो। जन्म-मरण रूप संसार से मुक्त कर अपार दया से मोक्ष प्रदान करो।

इस प्रकार महाराज ने नाना युक्तियों से अलंकृत भाषण किया। फिर कुछ परस्पर समालोचना के अनन्तर सायंकाल का कार्य समाप्त हो गया।

इस लेख के लिखने का प्रयोजन मेरा यह है कि उस समय महर्षि के पाण्डित का लोगों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता था। उनके आकर्षित व्यक्तित्व, मधुर वाणी और समझाने की सरल शैली से लोग इतने अधिक प्रभावित होते थे कि वे गहन से गहन विषय को भी आसानी से समझ लेते थे। इसीलिए उनके व्याख्यानों में बहुत भीड़ जुड़ा करती थी और उनकी बातें सुनकर लोग बड़े प्रसन्न होते थे। उस प्रभाव का अब हम अभाव देखते हैं।

180 महात्मा गांधी रोड (दो तल्ला)
कोलकाता

☞ पृष्ठ 5 का शेष

वर्ण व्यवस्था तथा ...

जितना अधिक भ्रष्ट और अपराधिक प्रवृत्ति का व्यक्ति होगा वह उतना ही प्रतिष्ठित नेता होगा। जिसके पीछे कोई सम्प्रदाय, जाति, वर्ग होता है उसके संकेत पर सत्ता प्रतिष्ठान उठक-बैठक लगाते हैं। देश का गद्दार देशभक्ति का उपदेश देता है और विदेशी धन पर पलनेवाला स्वदेशी का प्रवक्ता बनता है। देश की अखण्डता को खंडित करनेवाले राष्ट्रीय एकता के सूत्रधार समझे जाते हैं।

वैदिक वर्ण-व्यवस्था ने समाज के सामने यह शर्त रखी थी कि तुम्हारे लिए सम्मान-सत्ता और सम्पदा के अवसर समान रूप से उपलब्ध हैं, तुम स्वयं ही अपना मार्ग चुन लो कि तुम्हें क्या चाहिए? सम्मान चाहिए या सम्पदा का राज-सिंहासन? इस चुनाव करने तक तो व्यक्ति स्वतंत्र रहता था। बाद में यह शर्त रखी थी कि सम्मान उसे मिलेगा जो प्रबुद्ध एवं त्यागी होगा। सभी को त्यागी व्यक्तियों का सम्मान करना होता था क्योंकि वह अपने लिए नहीं जीता था बल्कि समाज के लिए जीता था। जब तक देश में प्राचीन वर्ण-व्यवस्था कायम रही तब तक देश का चरित्र तथा सुन्दर संगठन बना रहा। जब से यह व्यवस्था बिगड़ी तब से देश भी बिगड़ता गया।

आज देश में चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है। पुनः जातिय संघर्ष होने की संभावनाएं बढ़ गई हैं। चारों तरफ वोट की राजनीति ने समाज में विघटन पैदा कर दिया है। दलित, शोषित वर्ग

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

पत्र/कविता

परस्पर मतभेद दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए

'सरिता' का पाखंड विरोधी अभियान दिल्ली से सरिता नाम की एक पाक्षिक पत्रिका प्रकाशित हो रही है जो पाखंड और अंध विश्वास विरोधी लेख प्रकाशित करती है तथा अन्य सुधारवादी लेख भी छापती रहती है। यह पत्रिका कई वर्षो से छप रही है जो कि पहले मासिक थी। इस पत्रिका को पाठक वड़ी रुचि से पढ़ते हैं क्योंकि लेख अच्छे होते है। मेरे विचार में इसकी प्रकाशन संख्या बहुत अधिक है। मार्च मास के द्वितीय अंक में इलाहाबाद प्रयाग के पाखंड बारे बड़ा अच्छा लेख छपा है जबकि किसी आर्य पत्रिका ने इस बारे लेख नहीं छापा ऐसा में समझता हूँ। परन्तु इस पत्रिका में कुछ वेद राष्ट्रविरोधी लेख भी छपते रहते हैं जो आर्य समाज ठीक नहीं समझता।

वास्तव से हिन्दुओं के सब ग्रन्थों में प्रक्षेप किया गया इसलिये इसमें सरिता के सम्पादक का इतना दोष नहीं है दोष ग्रंथों में मिलावट करने वालों का है। परन्तु वेद तो किसी प्रकार की मिलावट से रहित हैं। क्योंकि वेद मंत्रों में किसी भी प्रकार का प्रक्षेप करना सम्भव ही नहीं है। वास्तव में वेदों के कुछ भाष्यकारों ने मंत्रों के अशुद्ध अर्थ किये हैं। सरिता का सम्पादक ऐसे अर्थो को छापता रहता है जिनसे जनता में वेदों की प्रतिष्ठा कम होती है। इसलिये आर्य प्रादेशिक सभा दिल्ली, आर्य प्रतिनिधि सभा अन्य आर्य विद्वानों को चाहिये कि सरिता में छपे वेद मंत्रो का उत्तर महऋषि दयानन्द अथवा अन्य आर्य समाज के विद्वानों द्वारा किये गये भाष्यों में लिखे अर्थों को सरिता में छपने के लिये भेजा करें तब सरिता के पाठकों का सत्यासत्य का ज्ञान होगा और वेदों की महत्ता बढ़ेगी। सरिता का सम्पादक आपके लेख को छापने से मना नहीं करेगा। ऐसा मेरा विश्वास है।

सरिता का मार्च द्वितीय अंक का प्रमाण है। 'आप के पत्र' कालम में 'रेप पीड़िता' के शीर्षक से । सरिता फरवरी प्रथम अंक का प्रमाण अर्थवेद 9.10.12 मंत्र किसी ने अधूरा अर्थ अर्थात् आधे मंत्र का अर्थ दिया था जो बड़ा आक्षेप युक्त था। इस मंत्र का पूरा शुद्ध अर्थ शिवशंकर लाल लखनऊ ने पत्रिका को भेजा जो सरिता वालों ने छापा है इससे पाठकों की भ्रांति दूर होगी। सरिता की विचार धारा सुधारवादी है जिसका स्वागत करना चाहिये आर्य बजाय भी एक सुधारवादी संस्था है परन्तु कुछ विचारों का इनमें परस्पर मतभेद सम्भव है जिसे दूर करने का यत्न करना चाहिये।

अश्विनी कुमार पाठक बी 4/256सी
केशवपुरम दिल्ली–35
दूरभाषा 2710 1636

****

जलियां वाला बाग और वीर ऊधम सिंह

रहती है जिस देश में, देशवासियो फूट,
होती है उस देश की, बुरी तरह से लूट।
बुरी तरह से लूट, नित्य झगड़े होते हैं,
दुखिया, दीन, अनाथ, वहां निशदिन रोते हैं।
घोर नर्क की खान, देश वह बन जाता है,
सुख के दर्शन वहां, न कोई कर पाता है।

आपस की ही फूट से, भारत रहा गुलाम,
भारतीयों को ना मिला, किंचित् भी आराम।
किंचित् भी आराम विदेशी थे तब शासक,
भारत्तीयों को दुष्ट एवं करते थे नाहक।
आजादी की मांग, भारती यदि करते थे,
ऋषियों के सुत–सुता, सैंकड़ों नित मरते थे।

अमृतसर पंजाब में, जलियां वाला बाग,
जिसे याद करके लगी, मम हृदय में आग।
मम हृदय में आग जुल्म डायर ने ढाए,
बालक, वृद्ध, जवान, हजारों जन मरवाए।
वैशाखी का महापर्व था जुल्म किया था,
जगत् पिता जगदीश, दुष्ट ने भुला दिया था।

नन्हें–नन्हें बालकों, का भी किया न ख्याल,
डायर हत्यारा बड़ा था पापी चांडाल।
था पापी चांडाल, त्याग दी थी मानवता,
हुआ स्वार्थ में लिप्त, धार ली थी दानवता।
ऊधम सिंह ने दुष्ट, खास लदंन में मारा,
मिटा दिया शैतान, जानता है जग सारा।

अमर रहेगा विश्व में ऊधम सिंह का नाम,
नव युवको! नव युवत्तियो! करो धर्म के काम।
करो धर्म के काम, काम जगती को आओ,
बनो वीर बलवान, अमर जग में हो जाओ।
कायर मानव मृत, सुनो! माना जाता है,
वीर साहसी मनुष्य, मान जग में पाता है।

भारत में अब हो गया, उग्रवाद का जोर,
आतंकवादी देश में, पाप रहे कर घोर।
पाप रहे कर घोर, जवानो! जोश दिखाओ,
अगंड़ाई ले उठो, जगत् में धूम मचाओ।
विस्मिल, शेखर, भगतसिंह बन जाओ प्यारो,
ऊधम सिंह से वीर बनो, दुष्टों को मारो।

पं. नन्दलाल निर्भय
आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल (हरियाणा)

"शतायु" प्रकृत्ति की अनुपम भेंट

विश्व में अब "शतायु" स्त्री पुरुषों की संस्था तेजी से बढ़ रही है। जो शतायु की अग्रसर होते हैं उनकी जीवन शैली अनुपम स्नेह ,की एक अद्भुत मिसाल होती है। जापान में सौ ज्यादा शतायु को प्राप्त करने वाले स्त्री पुरुष विभिन्न वृद्धाआश्रमों मे निवास करते हैं और समय–समय पर जापान के बुद्धिजीवी राजनीतिज्ञ, उद्योगपति और विचार उनके पास आकर विभिन्न जटिल समस्याओं पर परस्पर विचार–विमर्श करते हैं।

मानचेस्टर की एक महिला चिकित्सक डा. सुषमा गुप्ता के अनुसार शतायु प्राप्त करने वाले वद्ध मनोविज्ञान चिकित्सकों के लिये अध्ययन का सबसे प्रमुख पाठशाला होती है जो किसी भी किताब में उपलब्ध नही है।

शतायु प्राप्त करने वालों के पास असिमित ज्ञान होता है जिसको वह पूर्णातयाः परख चुके हैं। प्रायः शतायु प्राप्त करने वाले अपने जीवन के अनेक अनुभव जब उस मनोचिकित्त को बताते है तो वह अपने चिकित्सा केन्द्रों में उसका सदुपयोग करते हैं।

कृष्ण मोहन गोयल
113–बाजार कोट, अमरोहा 244221

95-वर्षीय प्रतापसिंह शूरजी वल्लभदास की हुंकार

● **हरिकृष्ण निगम**

क्या कोई इस बात पर आज सहसा विश्वास करेगा कि दशकों पहले तत्कालीन केन्द्रीय गृहमंत्री गुलजारी लाल नन्दा एक बार किसी आवश्यक कार्य से दिल्ली से मुम्बई कुछ दिनों के लिए आने वाले थे। वे सुबह-शाम गाय का शुद्ध दूध पीने के अभ्यस्त थे। उस समय महाराष्ट्र के प्रसिद्ध नेता एस.के. पाटिल जो केन्द्र में मंत्री रह चुके थे अपनी पहल पर गृहमंत्री की इस छोटी-सी दैनिक व्यवस्था के लिए मुम्बई में उनके आतिथ्य के लिए गिरवोव चौपाटी में 'कच्छ कैसल' नामक बहुमंजिले भवन में रहनेवाले विख्यात श्री प्रताप सूरजी वल्लभदास के पास गए। प्रतापसिंहजी एक अत्यन्त स्पष्टवादी निर्भीक सार्वजनिक छवि वाले उद्योगपति होने के साथ-साथ अखिल भारतीय सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के अध्यक्ष भी थे। श्री एस.के. पाटिल ने उन्हीं के यहाँ नंदा जी के लिए अल्पाहार के साथ दूध की व्यवस्था की थी। यह विस्मयजनक था कि प्रतापजी भाई ने तुरन्त ही एस.के. पाटिल को मना करवा दिया जिससे वे चकित रह गए। स्वयं पाटिल उनके आवास पर गए, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि गाय के दूध की व्यवस्था उनके मित्र के घर बहुत अच्छी थी, फिर क्यों उन्होंने इसे मना कर दिया।

सेठ प्रताप जी भाई ने खुलकर कह दिया कि भारत के गृहमंत्री होते हुए भी यदि नंदा जी को गोहत्या बन्द करवाने का साहस नहीं है तो इन्हें गाय के दूध का सेवन करने के नियम की क्या जरूरत है? अन्ततः उन्होंने उक्त व्यवस्था नहीं की। यह बात गुलजारी लाल नन्दा को मालूम होने पर स्वयं वे मुम्बई में प्रताप भाई से मिलने गए और बोले कि आपने मुझे बहुत अच्छी नसीहत दी है। जब तक गोहत्या बन्दी के लिए मैं कुछ न करूंगा तब तक गौ के दूध का सेवन नहीं करूंगा। आगे चलकर उनके प्रयास से 14 प्रदेशों में गौवध निषेध सम्बन्धी कानून पारित हुए थे।

यह प्रकरण हाल में 95-वर्षीय श्री प्रतापजी शूर जी वल्लभदास ने 23 दिसम्बर, 2012 के दिन मुम्बई में एक सार्वजनिक समारोह में, जो बोरिवली-स्थित स्वातंत्र्य वीर सावरकर उद्यान में आयोजित था, उसकी अध्यक्षता करते हुए अपने संस्मरणों में जनता के बीच स्वयं सुनाया। कौन कहता है कि आज चमत्कार नहीं होते पर हाल में मानव के मनोबल की चमत्कारिक प्रस्तुति का एक जीवन्त उदाहरण इन पंक्तियों के लेखक को देखने का सौभाग्य तब मिला जब प्रताप जी भाई इस अवस्था में भी लगभग एक घन्टे तक मंच से धाराप्रवाह अपने से संस्मरण उपस्थित जनता को सुना रहे थे।

यह एक दैवी संयोग जैसा था कि यह आयोजन 23 दिसम्बर, 2012 की संध्या को तीन मन्तव्यों का संयुक्त कार्यक्रम था। यह दिन भीलवाड़ा (शाहपुर) के क्रांतिवीर बलिदानी युवा केसरी सिंह, जोरावर सिंह और प्रताप सिंह जिन्होंने वायसराय लार्ड हार्डिंग पर दिल्ली में इसी दिन बम प्रहार के आरोप में ठीक एक सौ वर्ष पहले फांसी की सजा सहर्ष स्वीकार की थी, उनके बलिदान दिवस की स्मृति का भी यह दिवस था। संयोग से यह हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान दिवस के साथ गीता जयन्ती का भी दिन था। इस संयुक्त समारोह की अध्यक्षता कर रहे थे 95-वर्षीय प्रताप सिंह शूरजी वल्लभदास जिनका समर्पित जीवन उस समय के राष्ट्रीय घटनाक्रमों का साक्षी था।

कुछ अन्य दशकों पुराने संस्मरणों में अपनी परिष्कृत शब्दावली में उन्हें अनुप्राणित करते हुए, जो रोचक तथा अल्पज्ञात तथ्य उन्होंने बताया वह यह था कि किस तरह जब वेटिकन के पोप जॉन पॉल द्वितीय राजकीय अतिथि के सम्मान के साथ भारत में 1965 में आए थे तब सरकारी तंत्र द्वारा किस प्रकार उनका भव्य स्वागत होनेवाला था। शूरजी वल्लभदासजी को यह भी ज्ञात हुआ कि उस समय भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों में भारत के राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री लालबहादुर शास्त्री भी उनके स्वागत में आने वाले थे। वे व्यथा और रोष से उद्वेलित हो उठे। पोप की यात्रा का एजेन्डा और लक्ष्य उनके आने के पहले ही पता था क्योंकि वेटिकन के कार्डिनेलों की एक सभा में पोप घोषित कर चुके थे कि आगामी कुछ वर्षों में भारत के पिछड़े व विपन्न वर्गों के दो करोड़ लोगों को उन्हें ईसाई धर्म में दीक्षित करना है।

आयोजन की विस्तृत जानकारी और वेटिकन धर्मान्तरण के लक्ष्य के कुछ लिखित गोपनीय दस्तावेज लेकर मुम्बई के कुछ जागरूक संगठनों का एक प्रतिनिधि मंडल जिसके शूरजी वल्लभदास जी भी थे चुपचाप दिल्ली जाकर प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री से मिला। जब प्रधानमंत्री से वे मिले तो उनका पहला प्रश्न था- यह सामग्री व वेटिकन का प्रस्तावित धर्मान्तरण का दस्तावेज आपको कहाँ से मिला? प्रतापजी भाई बोले कि देश के प्रधानमंत्री के पास अगर यह जानकारी नहीं है, यह अचम्भे की बात है। लाल बहादुर शास्त्री से आग्रह किया गया कि वे पोप जॉन पाल द्वितीय के कार्यक्रमों में न जाएं अन्यथा भारत में आगे जितना भी ईसाई मतान्तरण होगा उस सबका दोष आप पर होगा।

प्रधानमंत्री ने तुरन्त अपने सचिव को बुलाया और आयोजकों को सूचित करने को कहा कि वे सरकारी कामों की व्यवस्था के कारण वे मुम्बई नहीं आ रहे हैं। प्रतिनिधि मण्डल ने प्रधानमंत्री से यह भी आग्रह किया कि राष्ट्रपति को मुम्बई न कि जाने की सलाह दें। प्रधानमंत्री ने तुरंत राष्ट्रपति भवन को उक्त आग्रह किया तथा प्रतिनिधि मण्डल को राष्ट्रपति भवन भेजा, जहाँ वे डॉ. राधाकृष्णन से मिला। राष्ट्रपति ने स्वयं बताया कि मेरी इच्छा मुम्बई जाने की नहीं है, अच्छा हुआ आप लोग आ गए। उन्होंने भी पोप जॉन पॉल के कार्यक्रम जाना निरस्त कर दिया।

प्रतिनिधिमण्डल उसी रात मुम्बई लौट आया। इधर ईसाई, पादरी व उच्च अधिकारी पिछली शाम से ही शूरजी वल्लभदास से मिलने की कोशिश कर रहे थे तथा बार-बार फोन आ रहे थे। अगले दिन 'कच्छ कैसल! पहुंचकर ईसाई नेताओं का पहला प्रश्न था कि आप कल कहां थे। उन्होंने मात्र संक्षिप्त उत्तर दिया- 'बाहर गया हुआ था।' पादरी ने कहा- "आप दिल्ली गए थे। आप लोगों ने हमारी बहुत हानि की है, सेठ प्रताप जी भाई ने उत्तर दिया- "हमने अपने देश की सेवा की है। आपको क्या नुकसान हुआ हमें मालूम नहीं!" इस प्रकार समयोचित पहल कर कदम उठा : उठाकर पोप जॉन पॉल द्वितीय और ईसाई जगत के षड्यंत्र को जो झटका लगा था, वह उन्होंने स्वयं अपने भाषण में 23 दिसम्बर, 2012 के उपर्युक्त आयोजन में बताया था।

मेरी आंखों को विश्वास नहीं हो रहा था कि यही व्यक्ति 1975 में शिवाजी पार्क की एक रैली में जब अटल बिहारी बाजपेयी जी को एक रु. 75 लाख की थैली भेंट की गई थी, उस आयोजन की अध्यक्षता कर रहा था। यही महापुरुष आपात्काल में 'इंदिरा गांधी का कोपभाजन भी बना था। और जेल में डाल दिया गया था। उनका समुद्री जहाजों का बड़ा उद्योग अपनी दो टूक स्पष्ट टिप्पणियों के कारण सरकार की आंखों में खटकते थे और उन्हें हर बन्दरगाह में प्रतिशोध का सामना करते हुए हानि उठानी पड़ रही थी।

आज यह तथ्य अतीत के महत्वपूर्ण समय के अन्तराल में धूमिल पड़ गए हो, उनके हाल के उपर्युक्त समारोह में सुनकर ऐसा लगा कि देश को जिनका ऋणी होना चाहिए हम उन्हें भूलते जा रहे हैं। जिस भामाशाह का आतिथ्य एक समय राष्ट्रीय कांग्रेस का हर बड़ा नेता जैसे महात्मा गांधी, सरदार पटेल, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस और यहां तक कि पण्डित नेहरू उनके 'कच्छ कैसल' में ठहरकर सहर्ष स्वीकार करते थे उनके आज के अनुयाई भी इतने अहसानफ़रामोश हो जाएंगे पर कल्पना ही नहीं की जा सकती है।

ए-1002, पंचशीलहाईट्स, महावीर नगर, कान्दिवली (पं.) मुम्बई-67

☞ *पृष्ठ 9 का शेष*

वर्ण व्यवस्था तथा ...

पर अत्याचार बढ़ गये हैं। वे सामूहिक रूप से धर्मान्तरण का रहे हैं। मेरी मान्यता है कि जब धर्मांतरण होता है तो किसी सीमा तक राष्ट्रीयता भी होती है। रिवाड़ी जिले के कालड़ावास गाँव में दलितों की पिटाई की गई कि वह घोड़ी पर क्यों चढ़े?

मध्य प्रदेश के शिवपुरी जिले के तलैया गांव में हरिजन औरतों की बुरी तरह पिटाई इसलिए हुई कि उन्होंने नंगे होकर नाचने से मना कर दिया था। फतेहपुर जिले के धर्मपुर में धनराज हरिजन को इसलिए जिन्दा जला दिया गया कि उसने अपनी पत्नी कुच्ची देवी को सामंतों की हवस शांत करने के लिए उसके साथ भेजने को मना कर दिया था।

वैदिक वर्ण-व्यवस्था पुनः स्थापित करने तथा जात-पात को समाप्त करने के लिए देश में ऐसा संगठन बनाने की आवश्यकता है जिसमें चरित्रवान्-निष्ठावान् तथा निःस्वार्थ भाव से काम करने वाले पूर्णकालिक व्यक्ति हों, जो देश में जाकर इस कार्य को करें। गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर अन्तर्जातीय विवाह भी वर्ण-व्यवस्था, जात-पात रहित समाज का निर्माण करने में सहायक हो सकता है।

श्री रामराजा में भारत की राजधानी दिल्ली में 4.11.2001 को हजारों की संख्या में दलित समाज के व्यक्तियों का हिन्दू धर्म धर्मान्तरण कराकर यह सिद्ध कर दिया है कि अब भी हिन्दुओं के नेता नहीं जागे तो हिन्दू धर्म अल्पसंख्यकों में आ जाएगा।

महामंत्री, ए/सी-23, आर्य समाज, टैगोर गार्डन (नई दिल्ली)-27

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 12-13/06/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

मुद्रक व प्रकाशक – श्री प्रबोध महाजन, सभा मंत्री द्वारा मदन गोयल के प्रबंध में अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि., डब्ल्यू–30, ओखला, फेस–II, नई दिल्ली–110020 (दूरभाष : 26388830–32) से मुद्रित कार्यालय 'आर्य जगत्' आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली–110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – श्री पूनम सूरी